

संयम स्वर्ण महोत्सव (२०१७-१८) की विनम्र प्रस्तुति क्र० २

श्री देवसेनाचार्यविरचिता

आलापपद्धतिः



अनुवादक

पण्डित रतनचन्द जैन, मुख्तार

प्रकाशक

जैन विद्यापीठ

सागर (म० प्र०)

आलापपद्धति:

कृतिकार	:	आचार्य देवसेन
अनुवादक	:	पण्डित रतनचन्द जैन, मुख्तार
संस्करण	:	२८ जून, २०१७ (आषाढ सुदी पंचमी, वीर निर्वाण संवत् २५४३)
आवृत्ति	:	११००
वेबसाइट	:	www.santshiromani.com

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान

जैन विद्यापीठ

भाग्योदय तीर्थ, सागर (म० प्र०) चलित दूरभाष ७५८२-९८६-२२२

ईमेल : jainvidyapeeth@gmail.com



मुद्रक

विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स

प्लॉट नं. ४५, सेक्टर-एफ, इन्डस्ट्रीयल एरिया गोविन्दपुरा

भोपाल (म० प्र०) ९४२५००५६२४

non copy right

अधिकार : किसी को भी प्रकाशित करने का अधिकार है, किन्तु स्वरूप, ग्रन्थ नाम, लेखक, सम्पादक एवं स्तर परिवर्तन न करें, हम आपके सहयोग के लिए तत्पर हैं, प्रकाशन के पूर्व हमसे लिखित अनुमति अवश्य प्राप्त करें। आप इसे डाउनलोड भी कर सकते हैं।

आद्य वक्तव्य

युग बीतते हैं, सृष्टियाँ बदलती हैं, दृष्टियों में भी परिवर्तन आता है। कई युगदृष्टा जन्म लेते हैं। अनेकों की सिर्फ स्मृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन कुछ व्यक्तित्व अपनी अमर गाथाओं को चिरस्थायी बना देते हैं। उन्हीं महापुरुषों का जीवन स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है, जो असंख्य जनमानस के जीवन को घने तिमिर से निकालकर उज्वल प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे ही निरीह, निर्लिप्त, निरपेक्ष, अनियत विहारी एवं स्वावलम्बी जीवन जीने वाले युगपुरुषों की सर्वोच्च श्रेणी में नाम आता है दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का, जिन्होंने स्वेच्छा से अपने जीवन को पूर्ण वीतरागमय बनाया। त्याग और तपस्या से स्वयं को शृंगारित किया। स्वयं के रूप को संयम के ढाँचे में ढाला। अनुशासन को अपनी ढाल बनाया और तैयार कर दी हजारों संयमी युवाओं की सुगठित धर्मसेना। सैकड़ों मुनिराज, आर्यिकाएँ, ब्रह्मचारी भाई-बहिनें। जो उनकी छवि मात्र को निहार-निहार कर चल पड़े घर-द्वार छोड़ उनके जैसा बनने के लिए। स्वयं चिद्रूप, चिन्मय स्वरूप बने और अनेक चैतन्य कृतियों का सृजन करते चले गए जो आज भी अनवरत जारी है। इतना ही नहीं अनेक भव्य श्रावकों की सल्लेखना करारकर हमेशा-हमेशा के लिए भव-भ्रमण से मुक्ति का सोपान भी प्रदान किया है।

महामनीषी, प्रज्ञासम्पन्न गुरुवर की कलम से अनेक भाषाओं में अनुदित मूकमाटी जैसे क्रान्तिकारी-आध्यात्मिक-महाकाव्य का सृजन हुआ। जिस पर अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम चलायी परिणामतः मूकमाटी मीमांसा के तीन खण्ड प्रकाशित हुए। आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर लगभग ५० शोधार्थियों ने डी० लिट्., पी-एच० डी० की उपाधि

प्राप्त की।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता आचार्य भगवन् की कलम से जहाँ अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद किए गए तो वहीं नवीन संस्कृत और हिन्दी भाषा में छन्दोबद्ध रचनायें भी सृजित की गईं। सम्पूर्ण विद्वत्जगत् आपके साहित्य का वाचन कर अर्चंभित हो जाता है। एक ओर अत्यन्त निस्पृही, वीतरागी छवि तो दूसरी ओर मुख से निर्झरित होती अमृतध्वनि को शब्दों की बजाय हृदय से ही समझना श्रेयस्कर होता है।

प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पड़े उपेक्षित तीर्थक्षेत्रों पर वर्षायोग, शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल में प्रवास करने से समस्त तीर्थक्षेत्र पुनर्जागृत हो गए। श्रावकवृन्द अब आये दिन तीर्थों की वंदनार्थ घरों से निकलने लगे और प्रारम्भ हो गई जीर्णोद्धार की महती परम्परा। प्रतिभास्थलियों जैसे शैक्षणिक संस्थान, भाग्योदय तीर्थ जैसा चिकित्सा सेवा संस्थान, मूकप्राणियों के संरक्षणार्थ सैकड़ों गौशालाएँ, भारत को इण्डिया नहीं 'भारत' ही कहो का नारा, स्वरोजगार के तहत 'पूरी मैत्री' और 'हथकरघा' जैसे वस्त्रोद्योग की प्रेरणा देने वाले सम्पूर्ण जगत् के आप इकलौते और अलबेले संत हैं।

कितना लिखा जाये आपके बारे में शब्द बौने और कलम पंगु हो जाती है, लेकिन भाव विश्राम लेने का नाम ही नहीं लेते।

यह वर्ष आपका मुनि दीक्षा का स्वर्णिम पचासवाँ वर्ष है। भारतीय समुदाय का स्वर्णिम काल है यह। आपके स्वर्णिम आभामण्डल तले यह वसुधा भी स्वयं को स्वर्णमयी बना लेना चाहती है। आपकी एक-एक पदचाप उसे धन्य कर रही है। आपका एक-एक शब्द कृतकृत्य कर रहा है। एक नई रोशनी और ऊर्जा से भर गया है हर वह व्यक्ति जिसने क्षणभर को भी आपकी पावन निश्रा में श्वासें ली हैं।

आपकी प्रज्ञा से प्रस्फुटित साहित्य आचार्य परम्परा की महान् धरोहर है। आचार्य धरसेनस्वामी, समन्तभद्र स्वामी, आचार्य अकलंकदेव, स्वामी विद्यानंदीजी, आचार्य पूज्यपाद महाराज जैसे श्रुतपारगी मुनियों की

शृंखला को ही गुरुनाम गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज, तदुपरांत आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने यथावत् प्रतिपादित करते हुए श्रमण संस्कृति की इस पावन धरोहर को चिरस्थायी बना दिया है।

यही कारण है कि आज भारतवर्षीय विद्वतवर्ग, श्रेष्ठीवर्ग एवं श्रावकसमूह आचार्यप्रवर की साहित्यिक कृतियों को प्रकाशित कर श्रावकों के हाथों में पहुँचाने का संकल्प ले चुका है। केवल आचार्य भगवन् द्वारा सृजित कृतियाँ ही नहीं बल्कि संयम स्वर्ण महोत्सव २०१७-१८ के इस पावन निमित्त को पाकर प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों का भी प्रकाशन जैन विद्यापीठ द्वारा किया जा रहा है।

पूर्व में यह ग्रन्थ अनेक संस्थाओं से प्रकाशित है। जैनदर्शन पढ़ने वाले पाठकों के लिए नयों का ज्ञान कराने के लिए यह लघुकाय ग्रन्थ बहुत उपयोगी है। इस ग्रन्थ पर पं० रतनचन्द्रजी मुख्तार का अनुवाद उपलब्ध है। पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ में सूत्र सम्बन्धि टिप्पण ग्रन्थ के पूर्व में ही एक साथ संयोजित थे, उन टिप्पणों की सूत्र के साथ उपयोगिता देखते हुए तथा विषय का स्पष्टीकरण देखते हुए अनेक चार्ट आदि को भी समायोजित किया गया है। एतदर्थ पूर्व प्रकाशन संस्था, अनुवादक, चार्ट निर्माता एवं पुनः प्रकाशन में सहयोगी सभी सुधी जनों का आभार व्यक्त करते हैं।

उक्त समस्त ग्रन्थों का शुद्ध रीति से प्रकाशन अत्यन्त दुरूह कार्य है। इस संशोधन आदि के कार्य को पूर्ण करने में संघस्थ मुनिराज, आर्यिका माताजी, ब्रह्मचारी भाई-बहिनों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया। उन्हें जिनवाणी माँ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला, जो सातिशय पुण्यार्जन तथा कर्मनिर्जरा का साधन बना।

जैन विद्यापीठ आप सभी के प्रति कृतज्ञता से ओतप्रोत है और आभार व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द खोजने में असमर्थ है।

गुरुचरणचंचरीक

आचार्य देवसेन और उनकी आलाप-पद्धति

श्री देवसेन नाम के अनेक दिगम्बर जैन आचार्य हुए हैं। यहाँ उन श्री देवसेन आचार्य का परिचय दिया जा रहा है जो विमलसेनगणि के शिष्य हैं। जिन्होंने विक्रम सं० ९९० में दर्शनसारनामक ग्रन्थ की रचना की थी।

आलापपद्धति, लघुनयचक्र, आराधनासार और तत्त्वसार नामक ग्रन्थ भी देवसेन के द्वारा रचित हैं।

आलापपद्धति—यह संस्कृत-गद्य में रचित छोटी-सी रचना है। इस ग्रन्थ में गुण, पर्याय, स्वभाव, प्रमाण, नय, गुण-व्युत्पत्ति, स्वभाव-व्युत्पत्ति, प्रमाण का कथन, निक्षेप की व्युत्पत्ति, नयों के भेदों की व्युत्पत्ति एवं अध्यात्मनयों का कथन किया गया है। आरम्भ में वचनपद्धति को ही आलापपद्धति कहा है। यह ग्रन्थ निम्नलिखित १६ अधिकारों में विभक्त है—

१. द्रव्याधिकार
२. गुणाधिकार
३. पर्यायाधिकार
४. स्वभावाधिकार
५. प्रमाणाधिकार
६. नय-अधिकार
७. गुण व्युत्पत्ति-अधिकार
८. पर्यायव्युत्पत्ति-अधिकार
९. स्वभावव्युत्पत्ति-अधिकार
१०. एकान्तपक्ष में दोष
११. नययोजना
१२. प्रमाणकथन
१३. नयलक्षण और भेद
१४. निक्षेप व्युत्पत्ति
१५. नयों के भेदों की व्युत्पत्ति
१६. अध्यात्मनय

नामानुसार विषयों का निरूपण इन अधिकारों में किया गया है। जैन सिद्धान्त को अवगत करने के लिए यह छोटा-सा ग्रन्थ बहुत उपयोगी है।

प्रस्तावना

इस ग्रन्थ का नाम यद्यपि आलापपद्धति (बोलचाल की रीति) है तथापि इसका अपरनाम 'द्रव्यानुयोग प्रवेशिका' है। इसमें द्रव्य, गुण, पर्याय, स्वभाव, प्रमाण और नय आदि का कथन है। द्रव्यानुयोग के स्वाध्याय से पूर्व आलापपद्धति का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना द्रव्यानुयोग में प्रवेश तथा उसका यथार्थ बोध नहीं हो सकता है।

मूल नय दो हैं—निश्चयनय और व्यवहारनय, जैसा कि इसी ग्रन्थ की गाथा ४ में कहा है—

“णिच्छयव्यवहारणया मूलमभेया णयाण सव्वाणं।”

भेद प्रतिभेदों की अपेक्षा न रखकर द्रव्यानुयोग में प्रायः निश्चय व व्यवहार ऐसे दो नयों का उल्लेख पाया जाता है। उपचरित-असद्भूत व्यवहारनय की दृष्टि से एक जीव दूसरे जीव को मारता है, सुखी दुखी करता है किन्तु अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय की दृष्टि से अपने कर्म ही जीव को सुखी-दुखी करते हैं या मारते हैं। समयसार कलश १६८ में कहा भी है—

“सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीयकर्मोदयान्मरणजीवित-दुःखसौख्यम्।”

अर्थात् इस जगत् में जीवों के मरण, जीवन, दुःख, सुख, सब सदैव नियम से (निश्चय से) अपने कर्मोदय से होता है। यह कथन यद्यपि अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय की दृष्टि से है तथापि उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय की अपेक्षा से इसको निश्चय कहा गया है।

असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा से सद्भूत व्यवहारनय को निश्चयनय कहा गया है—

व्यवहारस्स दु आदा पुग्गलकम्मं करेइ णेयविहं।
तं चेव पुणो वेयइ पुग्गलकम्मं अणेयविहं॥८४॥
णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं॥८३॥

(समयसार)

अर्थ—व्यवहारनय का यह मत है कि आत्मा अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों को करता है और भोगता है। निश्चयनय का यह मत है कि आत्मा कर्मोदय व अनुदय से होने वाले, अपने भावों को ही करता है तथा भोगता है।

निश्चयनय का विषय अभेद है, अतः निश्चयनय की दृष्टि में कर्ता-कर्म का भेद संभव नहीं है। सद्भूत-व्यवहारनय का विषय भेद है। अतः कर्ता-कर्म का भेद सद्भूत-व्यवहारनय की दृष्टि से सम्भव है। आत्मा पुद्गल-कर्मों को करता व भोगता है—यह असद्भूत-व्यवहारनय का कथन है, क्योंकि पुद्गलकर्म और आत्मा इन दो द्रव्यों का सम्बन्ध बतलाया गया है। अतः यहाँ पर असद्भूत-व्यवहारनय की अपेक्षा से सद्भूत-व्यवहारनय के कथन को निश्चय नय का कथन कहा गया है।

शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चयनय को व्यवहार कहा गया है—

“द्रव्यकर्माण्यचेतनानि भावकर्माणि च चेतनानि तथापि शुद्धनिश्चयापेक्षया अचेतनान्येव। यतः कारणादशुद्धनिश्चयोऽपि शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव।” (समयसार, गाथा ११५ टीका)

यद्यपि सामान्य से निश्चय व व्यवहार शब्दों का प्रयोग हुआ है तथापि निश्चय शब्द से कहाँ पर किस नय से प्रयोजन है और व्यवहार शब्द से किस नय से प्रयोजन है, इसका ज्ञान हुए बिना द्रव्यानुयोग का यथार्थ भाव नहीं भास सकता है। अतः द्रव्यानुयोग में प्रवेश करने से पूर्व इस ग्रन्थ का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

इस आर्ष ग्रन्थ के ज्ञान बिना आधुनिक साहित्य में गुण व पर्याय आदि के विषय में अनेक कथन आर्ष-विरुद्ध हैं। उनमें से कुछ का यहाँ पर दिग्दर्शन कराया जाता है—

लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका पृष्ठ ४ पर लिखा है—“जिस शक्ति के कारण से द्रव्य की अवस्था निरन्तर बदलती रहती है उसको द्रव्यत्वगुण कहते हैं।” आलापपद्धति ग्रन्थ में श्री देवसेन आचार्य ने लिखा है—

“द्रव्यस्यभावो द्रव्यत्वम्, निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्डवृत्या

स्वभाव-विभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यति अदुद्भवदिति द्रव्यम्॥६६॥”

अर्थ—जो अपने-अपने प्रदेश-समूह के द्वारा अखण्डपने से अपनी स्वभाव व विभाव पर्यायों को प्राप्त होता है, होवेगा, हो चुका है, वह द्रव्य है और उसका जो भाव वह द्रव्यत्वगुण है। अर्थात् वस्तु के सामान्यपने को द्रव्यत्व कहते हैं, क्योंकि वह सामान्य ही विशेषों (पर्यायों) को प्राप्त होता है।

वहीं पर अगुरुलघुगुण का लक्षण लिखा है—“जिस शक्ति के कारण से द्रव्य में द्रव्यपना कायम रहता है अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं होता है, एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं होता है और द्रव्य में रहने वाले अनन्त गुण बिखरकर अलग-अलग नहीं हो जाते हैं उस शक्ति को अगुरुलघुगुण कहते हैं।” आलापपद्धति में अगुरुलघुगुण का स्वरूप इस प्रकार कहा है—
“अगुरुलघोर्भावोऽगुरुलघुत्वम् सूक्ष्मा अवागोचराः प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रमाण्यादभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः ॥९९॥” अर्थात्—अगुरुलघु का भाव अगुरुलघुत्व है। जो सूक्ष्म है, वचन के अगोचर है, प्रति समय परिणमनशील है और आगम प्रमाण से जाना जाता है, वह अगुरुलघुगुण है।

अर्थपर्याय व व्यंजनपर्याय का लक्षण इस प्रकार किया जाता है—

“प्रदेशत्वगुण के सिवाय बाकी सम्पूर्ण गुणों के विकार को अर्थपर्याय कहते हैं। द्रव्य के प्रदेशत्वगुण के विकार (विशेष कार्य) को व्यंजनपर्याय कहते हैं।” (लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका)

किन्तु सिद्धान्त-चक्रवर्ती श्री वसुनन्दि आचार्य वसुनन्दिश्रावकाचार में लिखते हैं—

सुहमा अवायविसया खणखड्गो अत्थपज्जया दिट्ठा।

वजणपज्जाया पुण थूला गिरगोयरा चिरविवत्था॥२५॥

अर्थ—अर्थपर्याय सूक्ष्म है, ज्ञान का विषय है, शब्दों से नहीं कही जा सकती और क्षण-क्षण में नाश होती रहती है। किन्तु व्यंजन पर्याय स्थूल है, शब्दगोचर है और चिरस्थायी है।

इसी प्रकार अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रदेशत्व आदि गुणों के लक्षणों में भी आर्षग्रन्थ-विरुद्ध कथन पाया जाता है।

यह ग्रन्थ प्रथम गुच्छक में बनारस से, श्री माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला,

बम्बई से, मथुरा से व नातेपुते आदि से प्रकाशित हुआ है। प्रायः सभी प्रकाशित ग्रन्थों में किसी न किसी सूत्र का मूल पाठ बहुत अशुद्ध है। अतः इस ग्रन्थ के मूलसूत्रों के पाठ अजमेर की प्रति सं० ४३९ व ४४०, बूँदी की प्रति, दिल्ली के पंचायती मन्दिर की प्रति सं० ३१/१०४, वैदवाड़ा मन्दिर की प्रति, सेठ के कूचे के मन्दिर की प्रति तथा नया मन्दिर की प्रति सं० आ १४ (क), आ १४ (ख), आ १४ (ग), आ १४ (घ), आ १४ (ङ) से मिलान करके शुद्ध किये गये हैं। इनमें से बूँदी की प्रति में विशेष टिप्पण हैं। अजमेर की प्रति में ४-५ सूत्रों पर टिप्पण हैं। इन टिप्पणों से मूल पाठ के शुद्ध करने में तथा अनुवाद करने में बहुत सहायता मिली है।

आचार्य श्री शिवसागरजी का संघ जब बूँदी पहुँचा तो उस संघ के मुनि श्री अजितसागरजी ने वहाँ के शास्त्रभण्डार को देखा। उनकी दृष्टि में टिप्पण सहित आलापपद्धति की एक प्रति आई। इस प्रति की प्राप्ति में मुनि श्री अजितसागरजी विशेष निमित्त हैं, अतः मैं उनका विशेष रूप से आभारी हूँ।

श्री सेठ भागचन्दजी सोनी के सहयोग से अजमेर से दो प्रतियाँ तथा मुंशी श्री सुमेरचन्द्र जी के सहयोग से दिल्ली से आठ प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। इन प्रतियों से मिलान में लाला अर्हदासजी तथा बाबा ऋषभदासजी का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। इस ग्रन्थ के अर्थ करने में श्री पं० बालचन्दजी, वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली; श्री पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य, सागर तथा श्री पं० जीवंधरजी, इन्दौर का पूर्ण सहयोग रहा है। ग्रन्थकर्ता का परिचय श्री पं० परमानन्दजी, वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली से प्राप्त हुआ है।

श्री श्रीपालजी, लाला इन्द्रसेनजी, सेठ बद्रीप्रसादजी तथा भाई नेमचन्द आदि ने द्रव्य देकर प्रकाशन में सहयोग दिया है।

उपरोक्त सभी महानुभावों की सहायता व सहयोग के प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

इस ग्रन्थ के अनुवाद व टीका का कार्य यद्यपि सन् १९६७ ई० में पूर्ण हो चुका था किन्तु प्रेस की व्यवस्था न हो पाने के कारण इसका प्रकाशन न हो सका। गत वर्ष सन् १९६९ ई० में भाद्रपद मास के दशलक्षण पर्व में मेरठ सदर रहना हुआ। तब श्री रतनलाल जैन एम० काम० (सुपुत्र लाला महावीरप्रसाद जैन

मोटर वाले) ने मुद्रण का भार ले लिया। उनके तथा प्रेस के सम्बद्ध कर्मचारियों के सहयोग के फलस्वरूप इसका मुद्रण हो गया। मैं उक्त श्री रतनलाल आदि का भी बहुत आभारी हूँ।

मैं मन्दबुद्धि हूँ, यदि कहीं पर अनुवाद आदि में कोई अशुद्धि रह गई हो तो विद्वान् उसको शुद्ध करने की और मुझको क्षमा करने की कृपा करें।

रतनचन्द जैन, मुख्तार



अनुक्रमणिका

सूत्र संख्या	विषय	पृष्ठ
(गाथा १)	मंगलाचरण पूर्वक विषय की प्रतिज्ञा	१
	मंगल, निमित्त, हेतु, परिणाम, नाम, कर्ता का कथन	१
१	आलापपद्धति का अर्थ	५
३	आलापपद्धति का प्रयोजन	५
५-७	द्रव्यों के नाम तथा द्रव्य का लक्षण	
	लोक, अलोक के विभाग का कारण	५
गुणाधिकार		
८	लक्षण के नामान्तर	७
९	सामान्य गुणों के नाम व कथन	७
११	विशेष गुणों के नाम व कथन	११
	ज्ञान, दर्शन, सुख व वीर्य के लक्षण तथा	
	ज्ञान, दर्शन में अन्तर	
१४	चेतन, अचेतन, मूर्त, अमूर्त सामान्य गुण भी हैं	१५
	और विशेष भी हैं	
पर्याय-अधिकार		
१५	अर्थपर्याय व व्यंजनपर्याय	१६
१७	स्वभाव अर्थपर्याय-अगुरुलघुगुण के	१८
	विकार का विशेष कथन	
१८	जीव की विभावार्थ पर्याय	२३
१९	जीव की विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय	२४
२०	जीव की विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय	२५
२१	जीव की स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय	२६
२२	जीव की स्वभाव-गुण-व्यंजन पर्याय	२७
२३	पुद्गल की विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय	२७

२४	पुद्गल की विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय	२८
२५	पुद्गल की स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय, परमाणु का कथन	२८
२६	पुद्गल की स्वभाव-गुण-व्यंजन पर्याय व परमाणु के गुणों का कथन	३२
(गाथा १)	पर्यायें प्रतिक्षण उत्पन्न होती और विनशती रहती हैं द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य नित्य है, पर्यायार्थिक नय से द्रव्य अनित्य है	३३
(गाथा २)	धर्मादि चार द्रव्यों में मात्र अर्थ पर्यायें होती हैं किन्तु जीव, पुद्गल में व्यंजन पर्याय भी होती है क्रिया-निमित्तक उत्पाद व निष्क्रिय द्रव्य में उत्पाद	३३

स्वभाव-अधिकार

२७	द्रव्य का लक्षण, गुण व पर्याय का लक्षण; द्रव्य के तीनों लक्षणों में अन्तर नहीं है	३६
२८	सामान्य व विशेष स्वभाव व उनका स्वरूप स्वभाव व गुण में अन्तर	३७
२९	जीव व पुद्गल में २१ स्वभाव की सिद्धि जीव में अचेतनत्व व मूर्तत्व की सिद्धि तथा पुद्गल में चेतनत्व व अमूर्तत्व की सिद्धि	४०
३०	धर्मादि द्रव्यों में १६ स्वभाव	४३
३१	काल में १५ स्वभाव	४४
(गाथा ३)	जीव आदि द्रव्यों में स्वभावों का कथन	४५

प्रमाण-अधिकार

३३	प्रमाण व नय से २१ स्वभाव जाने जाते हैं	४६
३४-३८	प्रमाण का लक्षण व भेद व उनका विषय; केवलज्ञान के विषय पर विशेष विचार; ज्ञेयों के परिणमन अनुसार ज्ञान में परिणमन	४६-५५

नय अधिकार

३९	नय का लक्षण	५५
गाथा ४	निश्चयनय, व्यवहारनय का लक्षण व भेद	
४१	द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक; नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, एवंभूत नयों का विशेष कथन	५६
४१	अन्य प्रकार से नय के ९ भेद तथा इनके स्वरूपका विशेष कथन	५७
	द्रव्यार्थिक नय	
	पर्यायार्थिक नय	
	नैगम नय	
	संग्रह नय	
	व्यवहार नय	
	ऋजुसूत्र नय ।	
	शब्द नय	
	समभिरूढ़ नय	
	एवंभूत नय	
४२-४६	उपनय का लक्षण तथा भेद व्यवहार शब्द का अर्थ	६४-६७
	सद्भूतव्यवहार नय	
	असद्भूतव्यवहार नय	
	उपचरित-असद्भूत-व्यवहार नय	
४७	कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	६७
४८	उत्पाद-व्यय को गौण करके सत्ता को ग्रहण करने वाला शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	६८
४९	भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	६८
५०	कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	६९



५१	उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	६९
५२	भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	७०
५३	अन्वयसापेक्ष द्रव्यार्थिक नय	७१
५४	स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय	७१
५५	परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय	७२
५६	परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय	७३
५७	पर्यायार्थिक नय के छह भेद का कथन	७३
५८	अनादि-नित्य पर्यायार्थिक नय	७३
५९	सादिनित्य पर्यायार्थिक नय क्षायिकभाव सादि-नित्य है	७५
६०	अनित्य-शुद्ध पर्यायार्थिक नय	७६
६१	नित्य-अशुद्ध पर्यायार्थिक नय	७७
६२	नित्य-शुद्ध पर्यायार्थिक नय	७८
६३	अनित्य-अशुद्ध पर्यायार्थिक नय	७८
६४-६८	भूत-भावि-वर्तमान नैगम नय	७९-८३
६९-७०	सामान्य-विशेष संग्रह नय	८३-८४
७१-७२	दो प्रकार व्यवहार नय	८४-८५
७३-७५	दो प्रकार ऋजुसूत्र नय	८७
७६-७९	शब्द, समभिरूढ, एवंभूत नय	८८-९०
८२	शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार नय	९०
८३	अशुद्ध-सद्भूत-व्यवहार नय	९१
८४	असद्भूतव्यवहार नय तीन प्रकार	९१
८५	स्वजात्यसद्भूत-व्यवहार नय	९२
८६	विजात्यसद्भूत-व्यवहार नय	९३
८७	स्वजातिविजात्यसद्भूत-व्यवहार नय	९४
८८	उपचरित-असद्भूत-व्यवहार नय	९४
८९	स्वजाति-उपचरित-असद्भूत-व्यवहार नय	९६

१६ :: आलापपद्धति:

९०	विजाति-उपचरित-असद्भूत-व्यवहार नय	९७
९१	स्वजाति-विजाति-उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय	९७

गुण-व्युत्पत्ति-अधिकार

९२-९३	गुण और पर्याय का लक्षण	९८-९९
९४	अस्तित्व स्वभाव का लक्षण	९९
९५	वस्तु स्वभाव का लक्षण	९९

सामान्य के भेद

विशेष के भेद

पर्याय का लक्षण

९६-९७	द्रव्य का लक्षण	१००-१०१
-------	-----------------	---------

९८	प्रमेय स्वभाव का लक्षण	
----	------------------------	--

वर्तमान पर्याय ही प्रमेय है

९९(गा. ५)	अगुरुलघु गुण का लक्षण	१०३
-----------	-----------------------	-----

१००	प्रदेश का लक्षण	१०३
-----	-----------------	-----

१०१ (गा. ६)	चैतन्य का लक्षण	१०४
-------------	-----------------	-----

१०२	अचेतन-स्वभाव	१०४
-----	--------------	-----

१०३	मूर्त	१०५
-----	-------	-----

जीव मूर्त है

१०४	अमूर्त	१०६
-----	--------	-----

पर्याय की व्युत्पत्ति

१०५	पर्याय का व्युत्पत्ति-अर्थ	१०६
-----	----------------------------	-----

स्वभाव-व्युत्पत्ति अधिकार

१०६	अस्ति-स्वभाव	१०७
-----	--------------	-----

१०७	नास्ति-स्वभाव	१०७
-----	---------------	-----

१०८	नित्य स्वभाव	१०८
-----	--------------	-----

१०९	अनित्य-स्वभाव	१०८
-----	---------------	-----

११०-१११	एक-स्वभाव; अनेक-स्वभाव	१०८
---------	------------------------	-----

११२-११३	भेद व प्रभेद स्वभाव	१०९-११०
११४-११५	भव्य और अभव्य स्वभाव	११०-१११
(गाथा ७)	द्रव्य एक दूसरे में प्रवेश करते हुए भी दूसरे द्रव्य रूप नहीं होते	१११
११६	पारिणामिक भाव	११२
११८	स्वभाव गुण नहीं होते	११२
११९-१२०	गुण स्वभाव होते हैं और द्रव्य भी होते हैं	११२-११३
१२१	विभाव	११३
१२२	शुद्ध और अशुद्ध भाव	११३
१२३	उपचरित-स्वभाव	११४
१२४	सिद्ध भगवान् उपचार से सर्वज्ञ हैं एकान्त पक्ष में दोष	११४
(गाथा ८)	एकान्त दुर्नय है	११५
१२७	एकान्त से, सर्वथा सत् मानने पर संकर आदि दोष उत्पन्न हो जायेंगे संकर आदि ८ दोषों का कथन	११६
१२८-१३१	एकान्त से, सर्वथा असत्, नित्य, अनित्य, एकरूप, अनेकरूप में मानने में दोष	११७-११८
(गाथा ९)	विशेष बिना सामान्य और सामान्य रहित विशेष खर-विषाणवत् है	११८
१३२-१३६	भेद, अभेद, भव्य, अभव्य	११९-१२१
१३७	एकान्त से, सर्वथा स्वभाव नय का पक्ष लेने में संसार का अभाव	१२१
१३८	एकान्त से, सर्वथा विभाव के पक्ष में मोक्ष का अभाव	१२१
१३९	सर्वथा चैतन्य मानने पर सब जीवों के शुद्ध ज्ञानचेतना का प्रसंग आ जायेगा।	१२२

१४०	सर्वथा शब्द किसका वाची है	१२२
१४१	सर्वथा अचेतन के पक्ष में सकल चैतन्य का अभाव	१२३
१४२	जीव को सर्वथा मूर्त पक्ष में मोक्ष का अभाव	१२३
१४३	जीव को सर्वथा अमूर्त के पक्ष में संसार का अभाव	१२३
१४४-१४५	सर्वथा एकप्रदेश तथा सर्वथा अनेक प्रदेश मानने में दोष	१२३-१२४
१४६-१४७	सर्वथा शुद्ध तथा अशुद्ध मानने में दोष	१२४
१४८	उपचरित के एकान्त पक्ष में आत्मज्ञता का अभाव	१२५
१४९	अनुपचरित के एकान्त पक्ष में सर्वज्ञता का अभाव	१२५

नय योजना

(गाथा १०)	नानास्वभाव वाले द्रव्य को प्रमाण से जानकर, सापेक्ष सिद्धि के लिये नयों से युक्त करना चाहिए	१२५
१५०-१५७	नयों द्वारा अस्ति, नास्ति, नित्य, अनित्य, एक, अनेक, भेद, अभेद स्वभावों की सिद्धि	१२६-१२८
१५८	भव्य व अभव्य स्वभाव पारिणामिक हैं	१२८
१५९	जीव का चेतन स्वभाव	१२८
१६०	कर्म, नोकर्म भी चेतन-स्वभाव वाले हैं	१२९
१६१	कर्म, नोकर्म के अचेतन स्वभाव	१३०
१६२	जीव भी असद्भूत-व्यवहार नय से अचेतन है	१३०
१६३	कर्म, नोकर्म के मूर्त स्वभाव	१३०
१६४	जीव भी असद्भूत-व्यवहार नय से मूर्त है	१३०
१६६	पुद्गल उपचार से अमूर्त है	१३१
१६८	धर्म आदि द्रव्यों के भी एकप्रदेश स्वभाव	१३२
१७०	पुद्गल परमाणु के उपचार से नानाप्रदेशत्व है	१३३
१७१	कालाणु के उपचरित स्वभाव नहीं है	१३४
१७२	पुद्गल के, उपचार से अमूर्त-स्वभाव है	१३४

१७३-१७५	स्वभाव, विभाव, शुद्ध-स्वभाव, अशुद्ध स्वभाव, ये स्वभाव शुद्ध व अशुद्ध नय से हैं।	१३४-१३५
१७६	उपचरित स्वभाव असद्भूत व्यवहारनय से है	१३५
(गाथा ११)	जैसा वस्तु-स्वरूप है ज्ञान वैसा ही जानता है	

प्रमाण का कथन

१७७-१७८	प्रमाण का लक्षण व भेद	१३६
१७९-१८०	मति, श्रुत, अवाधि, मनःपर्यय ज्ञान सविकल्प, केवलज्ञान निर्विकल्प	१३७
	नय का लक्षण व भेद	१३७
१८१	नय के चार लक्षण	१३७
१८२	सविकल्प व निर्विकल्प नय	१३८

निक्षेप की व्युत्पत्ति

१८३	निक्षेप की व्युत्पत्ति तथा भेद	१३८
	नाम निक्षेप	१३९
	स्थापना निक्षेप	१४०
	द्रव्य निक्षेप	१४०
	भाव निक्षेप	१४०
	नयों के भेदों की व्युत्पत्ति	१४०
१८४-१८५	द्रव्यार्थिक नय, शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय की व्युत्पत्ति	१४०
१८६-१८९	अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय, अन्वयद्रव्यार्थिक नय, स्वद्रव्यादिग्राहक नय, परद्रव्यादिग्राहक नय की व्युत्पत्ति	१४१-१४२ १४२
१९०	परमभावग्राहक-द्रव्यार्थिक नय	१४२
१९१-१९३	पर्यायार्थिकनय, अनादिनित्य-पर्यायाधिक नय, सादिनित्य-पर्यायार्थिक नय की व्युत्पत्ति	१४२ १४२
१९४-१९५	शुद्ध-पर्यायार्थिक नय अशुद्ध पर्यायार्थिक नय की व्युत्पत्ति	१४३ १४३

१९६-२०२	नैगम आदि सात नयों की व्युत्पत्ति नैगम आदि नयों का विषय उत्तरोत्तर सूक्ष्म है, इसके दृष्टान्त	१४३-१४५
२०४	निश्चय नय का विषय	१४६
२०५	व्यवहार नय का विषय	१४६
२०६, २०९	सद्भूत-व्यवहार नय का विषय	१४७-१४८
२०७	असद्भूत-व्यवहार नय का विषय	१४७
२०८, २१०	उपचरित-असद्भूत-व्यवहार नय का विषय द्रव्य में द्रव्य का उपचार गुण में गुण का उपचार पर्याय में पर्याय का उपचार द्रव्य में गुण का उपचार द्रव्य में पर्याय का उपचार गुण में द्रव्य का उपचार गुण में पर्याय का उपचार पर्याय में द्रव्य का उपचार पर्याय में गुण का उपचार	१४८-१५०
२१२	प्रयोजन व निमित्त के वश उपचार होता है	१५१
२१३	अविनाभाव सम्बन्ध, संश्लेष सम्बन्ध, परिणामपरिणामि सम्बन्ध, श्रद्धाश्रद्धेय सम्बन्ध, ज्ञानज्ञेय सम्बन्ध, चारित्र-चर्या सम्बन्ध के वश से उपचार होता है	१५२-१५४
अध्यात्म नय		
२१६	निश्चय व व्यवहार नय का विषय	१५४
२१८	शुद्ध-निश्चय नय का विषय निरुपाधिक द्रव्य व गुण का अभेद है किन्तु बंध व मोक्ष इसका विषय नहीं हैं	१५५

२१९	अशुद्ध-निश्चय नय का विषय सोपाधिक द्रव्य व गुण का अभेद है	१५६
२२०	शुद्ध-निश्चय नय की अपेक्षा अशुद्ध-निश्चय नय भी व्यवहार है	१५८
२२१	सद्भूत-व्यवहार नय का विषय एक वस्तु है	१५८
२२२	भिन्न वस्तुओं का सम्बन्ध' असद्भूत व्यवहार नय का विषय है	१५८
२२४	उपचरित-सद्भूत-व्यवहार नय का विषय सोपाधिक द्रव्य में गुण-गुणी का भेद करना	१५९
२२५	अनुपचरित-सद्भूत-व्यवहार नय का विषय	१५९
२२६	निरुपाधि द्रव्य में गुण-गुणी का भेद करना	१६०
२२७	“संश्लेष संबंध रहित भिन्न वस्तुओं का सम्बन्ध” उपचरित-असद्भूत-व्यवहार नय का विषय है	१६०
२२८	“संश्लेष संबंध सहित भिन्न वस्तुओं का सम्बन्ध” अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहार नय का विषय है	१६१
	परिशिष्ट १	१६३
	परिशिष्ट २	१६९
	परिशिष्ट ३	१७०
	परिशिष्ट ४	१७१
	चार्ट -१. प्रमाण भेद	१७२
	२. ज्ञानादि नय भेद	१७२
	३. द्रव्य भेद	१७२
	४. गुण भेद	१७३
	५. आगम नय भेद	१७४
	६. पर्याय भेद	१७५
	७. आगम की दृष्टि से द्रव्यार्थिकादि नयों के भेद	१७६
	८. अध्यात्म नयों के भेद	१७७
	९. उपनयों के भेद	१७८



ॐ

श्री आचार्य-देवसेन-विरचिता

आलापपद्धतिः

मंगलाचरण पूर्वक ग्रंथकार की प्रतिज्ञा-

गुणानां विस्तरं वक्ष्ये स्वभावानां तथैव च।

पर्यायाणां विशेषेण नत्वा वीरं जिनेश्वरम्॥

टिप्पण—गुणानां=द्रव्यगुणानां। वीरं=विशेषेण 'इं' मोक्षलक्ष्मीं राति ददातीति यः सः वीरस्तं भूतभाविवर्तमानतीर्थकरसमूहं, पक्षे वर्द्धमानम्।

अन्वयार्थ—(वीरं जिनेश्वरं) विशेषरूप से मोक्ष लक्ष्मी को देने वाले वीर जिनेश्वर को अर्थात् श्री महावीर भगवान को (नत्वा) नमस्कार करके (अहं) मैं देवसेनाचार्य (गुणानां) द्रव्यगुणों के (तथैव च) और उसी प्रकार से (स्वभावानां) स्वभावों के तथा (पर्यायाणां) पर्यायों के भी (विस्तरं) विस्तार को (विशेषेण) विशेषरूप से (वक्ष्ये) कहता हूँ अर्थात् गुण, स्वभाव और पर्यायों के स्वरूप का विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ।

विशेषार्थ—यह मंगलस्वरूप श्लोक देशामर्षक होने से मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता इन छह अधिकारों का सकारण प्ररूपण किया जाता है। कहा भी है—

मंगल-णिमित्त-हेतु परिमाणं णाम तह य कत्तारं।

वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमाइरियो^१॥

मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता इन छह अधिकारों का व्याख्यान करने के पश्चात् आचार्य शास्त्र का व्याख्यान करें।

मंग-शब्दोऽयमुद्दिष्टः पुण्यार्थस्याभिधायकः।

तल्लातीत्युच्यते सद्भिर्मङ्गलं मंगलार्थिभिः॥^२

१. धवल पु० १ पृ० ७। २. धवल पु० १ पृ० ३३।

पापं मलमिति प्रोक्तमुपचार-समाश्रयात् ।
तद्धि गालयतीत्युक्तं मंगलं पण्डितैर्जनैः॥^१

यह मंग शब्द पुण्यरूप अर्थ का प्रतिपादन करने वाला माना गया है, उस पुण्य को जो लाता है उसे मंगल के इच्छुक सत्पुरुष 'मंगल' कहते हैं। उपचार से पाप को भी मल कहा है इसलिए जो उसका गालन अर्थात् नाश करता है उसे भी पण्डितजन 'मंगल' कहते हैं।

मंगल, पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, शुभ, कल्याण, भद्र और सौख्य इत्यादि मंगल के पर्यायवाची नाम हैं।^२

आदौ मध्येऽवसाने च मंगलं भाषितं बुधैः ।
तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्रं तदविघ्नप्रसिद्धये॥^३

विद्वान् पुरुषों ने, प्रारम्भ किये गये किसी भी कार्य के आदि, मध्य और अन्त में मंगल करने का विधान किया है। वह मंगल निर्विघ्न कार्यसिद्धि के लिए जिनेन्द्र भगवान् के गुणों का कीर्तन करता ही है।

यदि यह कहा जाये कि जिनेन्द्र भगवान् के गुणों का कीर्तन तथा नमस्कार व्यवहारनय का विषय है और शुभ परिणाम रूप होने से मात्र पुण्यबन्ध का ही कारण है, अतः मंगल नहीं करना चाहिए—तो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि गौतम स्वामी ने व्यवहारनय का आश्रय लेकर 'कृति' आदि चौबीस अनुयोग द्वारों के आदि में 'णमो जिगाणं' इत्यादि रूप से मंगल किया है। यदि कहा जाये कि व्यवहारनय असत्य है—सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि उसमें व्यवहार का अनुसरण करने वाले शिष्यों की प्रवृत्ति देखी जाती है। अतः जो व्यवहारनय बहुत जीवों का अनुग्रह करने वाला है उसी का आश्रय करना चाहिए ऐसा अपने मन में निश्चय करके गौतम स्थविर ने चौबीस अनुयोगद्वारों के आदि में मंगल किया है।^४

यदि कहा जाये कि पुण्यकर्म के बाँधने के इच्छुक देशव्रतियों को मंगल करना युक्त है, किन्तु कर्मों के क्षय के इच्छुक मुनियों को मंगल करना युक्त नहीं है—तो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि पुण्य-बंध के कारणों के प्रति उन दोनों (मुनि व श्रावक) में कोई विशेषता नहीं है। अर्थात् पुण्य बंध के कारणभूत कर्मों को जैसे देशव्रती श्रावक करता है वैसे ही मुनि भी करता है,

१. जयधवल पु०१ पृ०८ । २. धवल पु०१ पृ०३४ । ३. धवल पु०१ पृ०३१ । ४. धवल पु०१ पृ०४१ ।

मुनि के लिए उनका एकान्त निषेध नहीं है। यदि ऐसा माना जाये तो जिस प्रकार मुनियों को मंगल के परित्याग के लिए कहा जा रहा है उसी प्रकार उनके (मुनि के) पुण्य-बन्ध के कारण सराग-संयम का भी निषेध होगा। यदि कहा जाये कि मुनियों के सरागसंयम के परित्याग का प्रसंग प्राप्त होता है तो होओ, सो भी बात नहीं है, क्योंकि मुनियों के सरागसंयम के परित्याग का प्रसंग प्राप्त होने से उनके मुक्तिगमन के अभाव का भी प्रसंग प्राप्त होता है।^१

यदि कहा जाये कि सरागसंयम गुणश्रेणी निर्जरा का कारण है, क्योंकि उससे बंध की अपेक्षा कर्मों की निर्जरा असंख्यातगुणी होती है, अतः सरागसंयम में मुनियों की प्रवृत्ति का होना योग्य है, किन्तु अरिहंत को नमस्कार रूप मंगलाचरण करना योग्य नहीं है—तो ऐसा भी निश्चय नहीं करना चाहिए, क्योंकि अरिहंत नमस्कार भी तत्कालीन बंध की अपेक्षा असंख्यातगुणी कर्म-निर्जरा का कारण है। इसलिए सरागसंयम के समान अरिहंत-गुण-कीर्तन व नमस्कार में भी मुनियों की प्रवृत्ति प्राप्त होती है। कहा भी है—

अरहंतणमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयडमदी।

सो सव्वदुक्खमोक्खं पावइ अचिरेण कालेण^२॥

जो विवेकी जीव भावपूर्वक अरिहंत को नमस्कार करता है वह अतिशीघ्र समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है। यदि कोई कहे कि शुभ उपयोग से कर्मों का नाश होता है, यह बात असिद्ध है—सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि यदि शुभ और शुद्ध दोनों परिणामों से कर्मों का क्षय न माना जाये तो फिर कर्मों का क्षय हो नहीं सकता।^३

निमित्त का कथन -

छद्द्वणवपयत्थे सुयणाणाइच्च-दिप्पतेण।

पस्संतु भव्वजीवा इय सुय-रविणो हवे उदयो^४॥

भव्य जीव श्रुतज्ञान रूपी सूर्य के दीप्त तेज से छह द्रव्य और नव पदार्थों को भलीभाँति जानें, इस निमित्त से श्रुतज्ञान रूपी सूर्य का उदय हुआ है अर्थात् आलापपद्धति नामक ग्रन्थ की रचना हुई है।

१. जयधवल पु०१ पृ०८। २. जयधवल पु०१ पृ०९। ३. जयधवल पु०१ पृ०६। ४. धवल पु०१ पृ० ५५।

हेतु (फल) का कथन—अज्ञान का विनाश, सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति, देव-मनुष्यादि के द्वारा निरन्तर पूजा का होना और प्रत्येक समय में असंख्यात गुणित श्रेणीरूप से कर्मों की निर्जरा का होना साक्षात् फल है।

जियमोहिंधणजलणो अण्णाणतमंधयारदिणयरओ।

कम्ममलकलुसपुसओ जिणवयणमिवोवही सुहयो॥^१

यह जिनागम जीव के मोहरूपी ईन्धन के भस्म करने के लिए अग्नि के समान है, अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान है, कर्ममल अर्थात् द्रव्यकर्म और कर्मकलुष अर्थात् भावकर्म को मार्जन करने वाला समुद्र के समान है और परम सुभग है।

शब्दात्पदप्रसिद्धिः पदसिद्धेरर्थनिर्णयो भवति।

अर्थात्तत्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानात्परं श्रेयः॥^२

शब्द से पद की सिद्धि होती है, पद की सिद्धि से उसके अर्थ का निर्णय होता है। अर्थ-निर्णय से तत्त्वज्ञान और तत्त्वज्ञान से परमकल्याण होता है।

इस कथन से उन लोगों के मत का खण्डन हो जाता है जो शास्त्र को ज्ञान में निमित्त न मानकर यह कहते हैं कि शास्त्र से ज्ञान नहीं होता है।

परिमाण की व्याख्या—अक्षर, पद आदि की अपेक्षा परिमाण संख्यात है और तद्वाच्य विषय की अपेक्षा परिमाण अनन्त है।

नाम—इस शास्त्र का नाम आलापपद्धति है।

कर्ता—अर्थकर्ता और ग्रन्थकर्ता के भेद से कर्ता दो प्रकार का है। श्री १००८ महावीर तीर्थकर अर्थकर्ता हैं। श्री १०८ गौतम गणधर द्रव्यश्रुत के कर्ता हैं। श्री गौतम स्वामी, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी ये तीन अनुबद्ध केवली हुए। इनके पश्चात् परिपाटी क्रम से पाँच श्रुतकेवली हुए। इसके पश्चात् ज्ञान हीन होता गया किन्तु वह ज्ञान परम्परा से श्री १०८ देवसेन आचार्य को प्राप्त हुआ, जिन्होंने इस आलापपद्धति शास्त्र की रचना की है। इससे उस मत का खण्डन हो जाता है जो सर्वथा यह मानते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्याय का कर्ता नहीं हो सकता है।

इस प्रकार मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता का व्याख्यान समाप्त हुआ।

१. धवल पु०१ पृ० ५९। २. धवल पु०१ पृ०१०।

आलापपद्धतिर्वचनरचनाऽनुक्रमेण नयचक्रस्योपरि उच्यते ॥१॥

टिप्पण—आलापपद्धतिः=वचनपद्धतिः । वचनरचना=व्याख्या । नयचक्रस्य=सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं तदवयवा नयाः, नयानां चक्रं समूहस्तस्य । प्राकृतमयं नयशास्त्रं विलोक्य ।

शब्दार्थ—(आलाप) शब्दोच्चारण अर्थात् बोलचाल । (पद्धति) रीति या ढंग । (नयचक्र) सम्यग्ज्ञान के अवयव रूप नय उसका समूह ।

सूत्रार्थ—वचनों की रचना के क्रम के अनुसार प्राकृतमय नयचक्र नामक शास्त्र के आधार पर से आलापपद्धति को (मैं देवसेनाचार्य) कहता हूँ ।

अर्थात् इस आलापपद्धति शास्त्र की रचना प्राकृत-नयचक्र ग्रंथ के आधार पर हुई है ।

सा च किमर्थम् ? ॥२॥

टिप्पण—सा=आलापपद्धतिः ।

सूत्रार्थ—इस आलापपद्धति ग्रंथ की रचना किसलिए की गई है ?

द्रव्यलक्षणसिद्ध्यर्थम् स्वभावसिद्ध्यर्थञ्च ॥३॥

टिप्पण—लक्षणं=गुणाः । स्वभावसिद्ध्यर्थम्=आत्मस्वभाव-सिद्ध्यर्थम् ।

सूत्रार्थ—द्रव्य के लक्षण की सिद्धि के लिए और पदार्थों के स्वभाव की सिद्धि के लिये इस ग्रंथ की रचना हुई है ।

द्रव्याणि कानि ? ॥४॥

सूत्रार्थ—द्रव्य कौन हैं ?

जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि ॥५॥

सूत्रार्थ—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं ।

विशेषार्थ—जीव द्रव्य उपयोगमयी अथवा चैतन्यमयी है । वह संसारी और मुक्त दो प्रकार का है । संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के हैं ।

स्पर्श, रस, गंध और वर्ण जिसमें पाये जावें वह पुद्गल द्रव्य है ।

जो जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों को चलने में सहकारी कारण हो, जिसके बिना जीव और पुद्गल की गति नहीं हो सकती, वह धर्म द्रव्य है ।

जैसे, मछलियों के चलने में जल सहकारी कारण होता है—जहाँ तक जल होता है वहीं तक मछलियों का गमन होता है। मछलियों में गमन की शक्ति होते हुए भी जल के अभाव में मछलियों का गमन नहीं होता है अर्थात् जल से आगे मछलियाँ पृथ्वी पर गमन नहीं कर सकती हैं। इसीलिए धर्म द्रव्य का लक्षण गतिहेतुत्व कहा गया है। जहाँ तक धर्म द्रव्य है, वहाँ तक ही लोकाकाश है। लोक और अलोक के विभाजन में धर्म द्रव्य कारण है। कहा भी है—

लोयालोयविभेयं गमणं ठाणं च जाण हेदूहिं।

जइ णहि ताणं हेऊ किह लोयालोयववहारे॥१३५॥

(नयचक्र)

जो जीव और पुद्गल को ठहरने में सहकारी कारण हो वह अधर्म द्रव्य है। जैसे, पथिक को ठहरने में छाया सहकारी कारण है। इसके प्रदेश भी धर्म द्रव्य के समान हैं।

जो समस्त द्रव्यों को अवगाहन देवे वह आकाश द्रव्य है। क्षेत्र की अपेक्षा आकाश द्रव्य सब द्रव्यों से बड़ा है, सर्वव्यापी है, इसलिए यह समस्त द्रव्यों को अवकाश देने में समर्थ है। अन्य द्रव्य भी परस्पर अवगाहन देते हैं, किन्तु सर्वव्यापी नहीं होने से वे समस्त द्रव्यों को अवगाहन नहीं दे सकते, इसीलिए अवगाहनहेतुत्व आकाश द्रव्य का लक्षण कहा गया है।^१ धर्मद्रव्य के अभाव के कारण अलोकाकाश में कोई द्रव्य नहीं जाता है इसलिए वह किसी को अवगाहन नहीं देता है फिर भी उसमें अवगाहन दान की शक्ति है। इस प्रकार अलोकाकाश में भी अवगाहनहेतुत्व लक्षण घटित हो जाता है इससे, कार्य होने पर ही निमित्त कारण कहलाता है, इस सिद्धान्त का खण्डन हो जाता है। निमित्त अपने कारणपने की शक्ति से निमित्त कहलाता है।

जो द्रव्यों के वर्तन में सहकारी कारण हो वह कालद्रव्य है। काल के अभाव में पदार्थों का परिणमन नहीं होगा। परिणमन न हो तो द्रव्य व पर्याय भी न होगी। सर्व शून्य का प्रसंग आयेगा।^२

द्रव्य का लक्षण—

१. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय ५, २. कालाभावे न भावानां परिणामस्तदन्तरात्। न द्रव्यं नापि पर्यायः सर्वाभावः प्रसज्यते। (नियमसार गाथा ३२ की टीका में उद्धृत)।

सद्द्रव्यलक्षणम् ॥६॥^१

सूत्रार्थ—द्रव्य का लक्षण सत् है ।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥७॥^२

सूत्रार्थ—जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त है वह सत् है ।

विशेषार्थ—अन्तरंग और बहिरंग निमित्त के वश से जो नवीन अवस्था उत्पन्न होती है उसे उत्पाद कहते हैं जैसे, मिट्टी के पिंड की घट पर्याय । पूर्व अवस्था के नाश को व्यय कहते हैं जैसे घट की उत्पत्ति होने पर पिण्ड आकृति का व्यय । अनादिकालीन पारिणामिक स्वभाव है, उसका व्यय और उत्पाद नहीं होता किन्तु 'ध्रुवरूप से' स्थिर रहता है इसलिए उसे ध्रुव कहते हैं जैसे, पिण्ड और घट अवस्था में मिट्टी का अन्वय बना रहता है । (सर्वार्थसिद्धि) ।

॥ इति द्रव्याधिकारः ॥

गुणाधिकारः

गुणों का कथन प्रारंभ होता है—

लक्षणानि कानि ? ॥८॥

सूत्रार्थ—द्रव्यों के लक्षण (गुण) कौन-कौन से हैं ?

विशेषार्थ—लक्षण, शक्ति, धर्म, स्वभाव, गुण और विशेष ये सब एक 'गुण रूप' अर्थ के वाचक हैं ।^३

“व्यतिकीर्णवस्तुव्यावृत्तिहेतुर्लक्षणम्”^४ । अर्थात्—मिली हुई अनेक वस्तुओं में से किसी एक वस्तु को पृथक् करने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं । अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वं, अगुरुलघुत्वं, प्रदेशत्वं, चेतनत्वमचेतनत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं, द्रव्याणां दश सामान्यगुणाः ॥९॥

टिप्पण—अस्तित्वं=अस्ति इत्येतस्य भावोऽस्तित्वं सद्रूपत्वं स्वचतुष्टया-पेक्षया निश्चयेन, प्रदेशभेदो न यत्र स निश्चयः, स्वर्णे पीतत्वं यथा; तद्विपरीतो व्यवहारः यथा रंजितवस्त्रम् । वस्तुनो भावः वस्तुत्वं, सामान्य-विशेषात्मकं वस्तु । द्रव्यस्य भावो द्रव्यत्वं, निजनिजप्रदेश-समूहैरखण्डवृत्त्या स्वभाव-विभावपर्यायान्

१. तत्त्वार्थ सूत्र, अ० ५, सूत्र २९, २. तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय ५, सूत्र ३०, ३. शक्तिर्लक्षणविशेषो धर्मो रूपं गुणा-स्वभावश्च । प्रकृतिः शीलं चाकृतिरेकार्थं वाचकाः शब्दः । ४. न्यायदीपिका ।

द्रवति, द्रोष्यति, अदुद्रवदिति द्रव्यम्; सत् द्रव्यलक्षणम्, सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत्। प्रमेयस्य भावः प्रमेयत्वं, प्रमाणेन स्वपररूपं परिच्छेद्यं प्रमेयम्। अगुरुलघो-भावोऽगुरुलघुत्वम्; सूक्ष्मा अवागगोचराः प्रतिक्षणं वर्तमाना आगम-प्रमाणादभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः। प्रदेशस्य भावः प्रदेशत्वं क्षेत्रत्वं अविभागिपुद्गल-परमाणुनावष्टब्धम्। चेतनस्य भावः चेतनत्वं, चैतन्यं अनुभवनम्। अचेतनस्य भावोऽचेतनत्वं, अचैतन्यम् अननुभवनम्। मूर्तस्य भावो मूर्तत्वं रूपादिमत्त्वम्। अमूर्तस्य भावो अमूर्तत्वं रूपादिरहितत्वम्। यत् सर्वत्र प्राप्यते तत् सामान्यम्। इत्युक्ते चर्चा करोति कश्चित् चेतनत्वं मूर्तत्वं एतद्गुणद्वयं जीवपुद्गलाभ्यामन्यत्र न, तत्र सामान्यं कथं ? तत्रोत्तरं-भो! यदा एक एव जीवः एक एव पुद्गलस्तदा भवत्प्रश्नस्तादृग्विध एव, परन्तु जीवस्यानन्तता पुद्गलाणवोऽप्य-परिमितास्ततो दूषणं न।

सूत्रार्थ—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व अमूर्तत्व ये द्रव्यों के दस सामान्य गुण हैं।

विशेषार्थ—प्राकृत नयचक्र में भी कहा गया है—

दव्वाणं सहभूदा सामण्णविसेसदो गुणा णेया।

सव्वेसिं सामण्णा दह भणिया सोलस विसेसा॥११॥

अत्थित्तं वत्थुत्तं दव्वत्तं पमेयत्तं अगुरुलहुगुत्तं।

पदेसत्तं चेदणिदरं मुत्तममुत्तं वियाणोह॥१२॥

जो सदैव द्रव्यों के साथ रहें अर्थात् जो सहभू हों उन्हें गुण कहते हैं। अथवा एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य से पृथक् करे, उसे विशेष गुण कहते हैं। (सूत्र ९२-९३)

उन गुणों के सामान्य तथा विशेष इस प्रकार के दो भेद हैं। सामान्य गुण दस और विशेष गुण सोलह होते हैं। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व और अमूर्तत्व ये दस सामान्य गुण जानने चाहिए। यद्यपि ग्रन्थकार स्वयं इन गुणों का स्वरूप आगे सूत्र ९४-१०४ में कहेंगे तथापि पाठकों की सुविधा के लिये उनका स्वरूप यहाँ पर भी दिया जाता है।

जिस द्रव्य को जो स्वभाव प्राप्त है, उस स्वभाव से च्युत न होना अस्तित्व गुण है। (सूत्र १०६)

सामान्य-विशेषात्मक वस्तु होती है। उस वस्तु का जो भाव वह वस्तुत्व है। (सूत्र ९५)

जो अपने प्रदेश-समूह के द्वारा अखण्डपने से अपने स्वभाव व विभाव पर्यायों को प्राप्त होता है, होवेगा, हो चुका है, वह द्रव्य है। उस द्रव्य का जो भाव, वह द्रव्यत्व है। अथवा, वस्तु के सामान्यपने को द्रव्यत्व कहते हैं, क्योंकि वह सामान्य ही विशेषों को प्राप्त होता है। (सूत्र ९६)

जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी भी प्रमाण का (ज्ञान) का विषय अवश्य होता है वह प्रमेयत्व गुण है। (सूत्र ९८)

जो सूक्ष्म है, वचन के अगोचर है, प्रतिसमय परिणमनशील है और आगम प्रमाण से जाना जाता है, वह अगुरुलघु गुण है। (सूत्र ९९)

संसार अवस्था में कर्म-परतंत्र जीव में स्वाभाविक अगुरुलघु गुण का अभाव है।^१

किन्तु कर्मोदय कृत अगुरुलघु से अत्यन्त निवृत्त हो जाने पर स्वाभाविक अगुरुलघु गुण का आविर्भाव हो जाता है।^२

जिस गुण के निमित्त से द्रव्य क्षेत्रपने को प्राप्त हो वह प्रदेशत्व गुण है। एक अविभागी पुद्गल परमाणु के द्वारा व्याप्त क्षेत्र को प्रदेश कहते हैं। (सूत्र १००)

अनुभूति का नाम चेतना है। जिस शक्ति के निमित्त से स्व पर की अनुभूति अर्थात् प्रतिभासकता होती है वह चेतना गुण है। (सूत्र १०१)

जड़पने को अचेतन कहते हैं, अननुभवन सो अचेतनता है। चेतना का अभाव सो अचेतनत्व है। (सूत्र १०२)

रूपादिपने को अर्थात् स्पर्श-रस-गंध और वर्णपने को मूर्तत्व कहते हैं। (सूत्र १०३)

स्पर्श-रस-गंध-वर्ण इनसे रहितपना अमूर्तत्व है। (सूत्र १०४)

ये गुण एक से अधिक द्रव्यों में पाये जाते हैं इसलिये ये सामान्य गुण हैं। चेतनत्व भी सर्व जीवों में पाया जाता है इसलिए सामान्य गुण है। मूर्तत्व भी

१. अगुरुलघुअतं णाम जीवस्स साहावियमत्थि चे ण, संसारावत्थाए कम्मपरतंतम्मि तस्साभावा। (धवल पु० ६ पृ० ५८) २. अनादिकर्मनोकर्मसम्बन्धानां कर्मोदयकृतमगुरुलघुत्वम्, तदत्यन्तविनिवृत्तौ दु स्वाभाविकमाविर्भवति। (रा. वा. ८/११)

सर्व पुद्गलों में पाया जाता है इसलिए सामान्य गुण है। जीव के अतिरिक्त अन्य पाँच द्रव्य अचेतन हैं और जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य अमूर्तिक हैं, इसलिये अचेतनत्व और अमूर्तत्व भी सामान्य (साधारण) गुण हैं।^१

प्रश्न—चेतनत्व और मूर्तत्व सामान्य गुण कैसे हैं ?

उत्तर—जीव और पुद्गल यदि एक एक होते तो शंका ठीक थी। किन्तु जीव भी अनन्त हैं और पुद्गल भी अनन्त हैं। अतः स्वजाति की अपेक्षा चेतनत्व और मूर्तत्व सामान्य गुण हैं।

प्रत्येकमष्टौ सर्वेषाम् ॥१०॥

टिप्पण—सर्वेषां=सर्वेषां द्रव्याणां। एकैकद्रव्ये अष्टौ अष्टौ गुणा भवन्ति। जीवद्रव्ये अचेतनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति। पुद्गलद्रव्ये चेतनत्व-ममूर्तत्वं च नास्ति एवं द्विद्विगुणवर्जिता अष्टौ अष्टौ गुणाः प्रत्येकद्रव्ये भवन्ति।

सूत्रार्थ—इन दस सामान्य गुणों में से प्रत्येक द्रव्य में आठ-आठ गुण हैं और दो-दो गुण नहीं हैं।

जीव द्रव्य में अचेतनत्व और मूर्तत्व ये दो गुण नहीं हैं। पुद्गल द्रव्य में चेतनत्व और अमूर्तत्व ये दो गुण नहीं हैं। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य इन चार द्रव्यों में चेतनत्व और मूर्तत्व ये दो गुण नहीं हैं। इस प्रकार दो-दो गुणों को छोड़कर प्रत्येक द्रव्य में आठ-आठ गुण होते हैं।

जीव में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व और अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं।

पुद्गल द्रव्य में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, अचेतनत्व और मूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य इन चार द्रव्यों में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, अचेतनत्व और अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं।

अब द्रव्यों के विशेष गुणों को बतलाते हैं।

१. चेदणमचेदणा तह मुत्तममुत्तावि चरिम जे भणिया।
सामण्ण सजाईणं ते वि विसेसा विजाईणं ॥१६॥ (प्राकृत नयचक्र)

ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि^१, स्पर्शरसगन्धवर्णाः^२, गतिहेतुत्वं, स्थिति-
हेतुत्वं, अवगाहनहेतुत्वं, वर्तनाहेतुत्वं, चेतनत्वमचेतनत्वं, मूर्तत्वम-
मूर्तत्वं, द्रव्याणां षोडश विशेषगुणाः॥११॥

टिप्पण—विशेषगुणो ज्ञानं सामान्यगुणो दर्शनं आत्मसम्बन्धिनः।
स्पर्शरसगन्धवर्णाः पुद्गलसम्बन्धिनः। जीवं विना पंचद्रव्याणां अचेतनत्वम्।
पुद्गलद्रव्यस्य मूर्तत्वम्। पुद्गलं विना पंचद्रव्याणां अमूर्तत्वम्।

सूत्रार्थ—ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गतिहेतुत्व,
स्थितिहेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व
ये द्रव्यों के सोलह विशेष गुण हैं।

विशेषार्थ—जिस शक्ति के द्वारा आत्मा पदार्थों को साकार जानता है,
सो ज्ञान है।

भूतार्थ का प्रकाश करने वाला ज्ञान होता है। अथवा सद्भाव के निश्चय
करने वाले धर्म को ज्ञान कहते हैं।^३

जाणइ तिकालसहिए दव्वगुणे पज्जे य बहुभेए।

पच्चक्खं च परोक्खं अणेण णाणे त्ति णं वेत्ति॥२९९॥

(गो.जी.)

जिसके द्वारा जीव त्रिकाल-विषयक समस्त द्रव्य, उनके गुण और
अनेक प्रकार की पर्यायों को प्रत्यक्ष और परोक्षरूप से जाने सो ज्ञान है। बहिर्मुख
चित् प्रकाश को ज्ञान माना है।^४

अन्तर्मुख चित् (चैतन्य) दर्शन है।^५ जो आलोकन करता है, वह
आलोक या आत्मा है तथा वर्तन अर्थात् व्यापार सो वृत्ति है। आलोकन अर्थात्
आत्मा की वृत्ति (व्यापार) सो आलोकन-वृत्ति या स्वसंवेदन है और वही दर्शन
है। यहाँ पर 'दर्शन' शब्द से लक्ष्य का निर्देश किया है। अथवा प्रकाश-वृत्ति
दर्शन है। 'प्रकाश' ज्ञान है। उस प्रकाश (ज्ञान) के लिए जो आत्मा का व्यापार
सो प्रकाश-वृत्ति है और वही दर्शन है। विषय और विषयी के योग्य देश में

१. 'वीर्य' इति पाठान्तरम्। २. 'वर्ण' इति पाठान्तरम्। ३. "भूतार्थप्रकाशकं ज्ञानम्।
अथवा सद्भावविनिश्चयोपलम्भकं ज्ञानम्।" (धवल पु० १ पृ० १४२ व १४३) ४. धवल पु०
१ पृ० १४५, ५. धवल पु० १ पृ० १४५

होने की पूर्वावस्था दर्शन है।^१

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कटटु मायारं।

अविसेसिऊण अत्थे दंसणमिदि भण्णदे समये॥४८२॥ (गो.जी.)

सामान्य विशेषात्मक बाह्य पदार्थों को विशेष रूप से अलग-अलग भेदरूप से ग्रहण नहीं करके जो सामान्य ग्रहण (आत्मग्रहण) अर्थात् स्वरूप (निजरूप) मात्र का अवभासन होता है उसको परमागम में दर्शन कहा है। अथवा सामान्य अर्थात् आत्मा के ग्रहण को दर्शन कहते हैं।^२

जो स्वाभाविक भावों के आवरण के विनाश होने से आत्मीक शान्तरस अथवा आनन्द उत्पन्न होता है वह सुख है।^३ सुख का लक्षण अनाकुलता है।^४

स्वभाव प्रतिघात का अभाव सो सुख है।^५ मोहनीय कर्म के उदय से इच्छारूप आकुलता उत्पन्न होती है सो ही दुख है। मोहनीय कर्म के नाश होने से आकुलता का भी अभाव हो जाता है और आत्मीक परम-आनन्द उत्पन्न होता है, वही सुख है।^६

वीर्य का अर्थ शक्ति है।^७ वीर्य, बल और शुक्र ये सब एकार्थक शब्द हैं।^८ जीव की शक्ति को वीर्य कहते हैं। आत्मा में अनन्त वीर्य है किन्तु अनादि काल से उस अनन्त शक्ति को वीर्यान्तराय कर्म ने घात रखा है। उसके क्षयोपशम से कुछ वीर्य प्रकट होता है।

१. “आलोकत इत्यालोकनमात्मा, वर्तनं वृत्तिः, आलोकनस्य वृत्तिरालोकनवृत्तिः स्वसंवेदनं, तद्दर्शनमिति लक्ष्यनिर्देशः। प्रकाशवृत्तिर्वा दर्शनम्। प्रकाशो ज्ञानम्, तदर्थमात्मनो वृत्तिः। प्रकाशवृत्तिस्तद्दर्शनम्। विषयविषयिसंपातात् पूर्वावस्था दर्शनमित्यर्थः।” (धवल पु० १ पृ० १४८)।
२. “भावानां सामान्यविशेषात्मक- बाह्यपदार्थानां आकारं भेदग्रहणमकृत्वा यत् सामान्यग्रहणं स्वरूप-मात्रावभासनं तद्दर्शनमिति परमागमे भण्यते।” (जी. प्र. टी.); सामान्यग्रहणमात्मग्रहणं तद्दर्शनम्। (वृ.द्र.सं.)
३. ‘स्वभावप्रतिकूल्याभावहेतुकं सौख्यम्।’ (पंचास्तिकाय, गा. १६३ टीका)
४. ‘अनाकुलत्वैकलक्षणं सौख्यम्।’ (प्रवचनसार, गा. ५९ टीका)
५. ‘स्वभावप्रतिघाताभाव-हेतुकं हि सौख्यम्।’ (प्रवचनसार, गा. ६१ टीका)।
६. ‘सौख्यं च मोहक्षयात्।’ (पद्मनन्दि ८/६; तत्त्वार्थवृत्ति ९/४४)
७. ‘वीर्यः शक्तिरित्यर्थः।’ (धवल पु० १३ पृ० ३९०)
८. ‘वीर्यं बलं शुक्रमित्येकोऽर्थः।’ (धवल पु० ६ पृ. ७८)

जो स्पर्श किया जाता है वह स्पर्श है और जो स्वाद को प्राप्त होता है वह रस है। जो सूंघा जाता है वह गन्ध है। जो देखा जाता है वह वर्ण है।^१ कोमल, कठोर, हल्का, भारी, ठंडा, गर्म, स्निग्ध, रूक्ष के भेद से स्पर्श आठ प्रकार का है। तीखा, कड़वा, खट्टा, मीठा और कसैला के भेद से रस पाँच प्रकार का है। सुगन्ध और दुर्गन्ध के भेद से दो प्रकार की गन्ध है। काला, नीला, पीला, सफेद और लाल के भेद से वर्ण पाँच प्रकार का है। ये स्पर्श आदि के मूल भेद हैं। वैसे प्रत्येक के संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद होते हैं।^२

जीव और पुद्गलों को गमन में सहकारी होना गतिहेतुत्व है।

जीव और पुद्गलों को ठहरने में सहकारी होना स्थितिहेतुत्व है।

समस्त द्रव्यों को अवकाश देना अवगाहनहेतुत्व है।

समस्त द्रव्यों के वर्तन में सहकारी होना वर्तनाहेतुत्व है।

चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व का स्वरूप सूत्र ९ की टीका में कहा जा चुका है। चेतनत्व सर्व जीवों में पाया जाता है इसलिए इसको सामान्य गुणों में कहा गया है। किन्तु पुद्गल आदि द्रव्यों में नहीं पाया जाता इसलिए इसे विशेष गुणों में कहा जाता है। अचेतनत्व पुद्गल आदि पाँच द्रव्यों में पाया जाता है इसलिए सामान्य गुणों में कहा है, किन्तु जीव द्रव्य में नहीं पाया जाता इसलिए विशेष गुणों में भी कहा है। मूर्तत्व सर्व पुद्गल द्रव्यों में पाया जाता है इसलिए सूत्र ९ में सामान्य गुणों में भी कहा है, किन्तु जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों में नहीं पाया जाता है इसलिए विशेष गुण कहा है इसी प्रकार अमूर्तत्व गुण जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन द्रव्यों में पाया जाता है इसलिए सूत्र ९ में सामान्य गुण कहा है।^३ किन्तु पुद्गल द्रव्य में नहीं पाया जाता इसलिए विशेष गुण कहा है। (देखो सूत्र १४)। प्राकृत नयचक्र में इन विशेष गुणों का कथन निम्न प्रकार है :-

णाणं दंसण सुह सत्ति रूवरसगंधफास गमणठिदी।

वट्टणगाहणहेउं मुत्तममुत्तं खु चेदणिदरं च ॥१३॥

अट्टचदु णाण दंसणभेया सत्ति सुहस्स इह दो दो।

१. सर्वार्थसिद्धि २/२०, २. सर्वार्थसिद्धि ५/२३

३. चेदणमचदेणा तह मुत्तममुत्तावि चरिम जे भणिया।

सामण्ण सजाईणं ते वि विसेसा विजाईणं ॥१६॥ (प्राकृत, नयचक्र पृ० २५)

वण्णरस पंच गंधा दो फासा अट्ट णायव्वा ॥१४॥

आठ प्रकार का ज्ञान-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, विभंगज्ञान। चार प्रकार का दर्शन-चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन।

“क्षायोपशमिकी शक्तिः क्षायिकी चेति शक्ते द्वौ भेदौ।”^१

अर्थात्— शक्ति के दो भेद हैं—क्षायोपशमिकी शक्ति और क्षायिकी शक्ति। सुख दो प्रकार का—इन्द्रिय जनित और अतीन्द्रिय सुख।^२

जीव और पुद्गल में पाए जाने वाले विशेष गुणों की संख्या—

प्रत्येकं जीवपुद्गलयोः षट् ॥१२॥^३

टिप्पण—ज्ञानदर्शनसुखवीर्यचेतनत्वामूर्तत्वानि षट् जीवस्य स्पर्शरस-गन्धवर्णाचेतनत्वमूर्तत्वानि षट् पुद्गलस्य।

सूत्रार्थ—सोलह प्रकार के विशेष गुणों में से जीव और पुद्गल में छह-छह विशेष गुण पाये जाते हैं।

विशेषार्थ—जीव द्रव्य में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, चेतनत्व और अमूर्तत्व ये छः विशेष गुण पाये जाते हैं। **जैन विद्यापीठ**

पुद्गल द्रव्य में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, मूर्तत्व और अचेतनत्व ये छह विशेष गुण पाये जाते हैं।

धर्मादिक चार द्रव्यों में पाये जाने वाले विशेष गुणों की संख्या—

इतरेषां प्रत्येकं त्रयो गुणाः ॥१३॥^४

१. प्राकृत नयचक्र पृ० २४।
२. ‘इन्द्रियजमतीन्द्रियं चेति सुखस्य द्वौ भेदौ।’ (प्राकृत, नयचक्र पृ० २४)
३. ‘षोडशविशेषगुणेषु जीवपुद्गलयोः षडिति। जीवस्य ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि चेतनत्वममूर्तत्वमिति षट्। पुद्गलस्य स्पर्शरसगन्धवर्णमूर्तत्वमचेतनत्वमिति षट्।’ ऐसा ज्ञात होता है कि मुद्रित पुस्तकों में जो यह पाठ है वह टिप्पण का पाठ मूल पाठ में ले लिया गया है।
४. “इतरेषां धर्माधर्माकाशकालानां प्रत्येकं त्रयो गुणाः। धर्मद्रव्ये गतिहेतुत्व ममूर्तत्वम-चेतनत्वमेते त्रयो गुणाः। अधर्मद्रव्ये स्थिति हेतुत्वममूर्तत्व-मचेतनत्वमिति। आकाशद्रव्ये अवगाहनहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति। कालद्रव्ये वर्तनाहेतुत्व ममूर्तत्वमचेतनत्वमिति विशेषगुणाः।” मुद्रित पुस्तकों में यह पाठ है। ऐसा ज्ञात होता है कि टिप्पण का पाठ मूल पाठ में ले लिया गया।

टिप्पण—इतरेषां=धर्मादीनां धर्माधर्माकाशकालानाम् । धर्मस्य गतिहेतुत्वा-
चेतनत्वामूर्तत्वानि त्रीणि । अधर्मस्य स्थितिहेतुत्वाचेतनत्वा-मूर्तत्वानि त्रीणि ।
आकाशस्य अवगाहनहेतुत्वाचेतनत्वामूर्तत्वानि त्रीणि । कालस्य वर्तनाहेतुत्वा-
चेतनत्वामूर्तत्वानि त्रीणि ।

सूत्रार्थ—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य इन चारों
द्रव्यों में तीन-तीन विशेष गुण पाये जाते हैं ।

विशेषार्थ—धर्मद्रव्य में गतिहेतुत्व, अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये तीन
विशेष गुण पाये जाते हैं ।

अधर्म द्रव्य में स्थिति हेतुत्व, अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये तीन विशेष
गुण पाये जाते हैं ।

आकाश द्रव्य में अवगाहनहेतुत्व, अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये तीन विशेष
गुण पाये जाते हैं ।

कालद्रव्य में वर्तनाहेतुत्व, अमूर्तत्व तथा अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण
पाये जाते हैं ।

आगे अचेतनत्व आदि चार गुणों को सामान्य गुणों तथा विशेष गुणों में
क्यों कहा है, इस शंका का परिहार करते हैं—

अन्तस्थाश्चत्वारो गुणाः स्वजात्यपेक्षया सामान्यगुणा

विजात्यपेक्षया त एव विशेषगुणाः ॥१४॥

टिप्पण—अन्तस्थाः चत्वारो गुणाः=चेतनत्वं, अचेतनत्वं, मूर्तत्वं, अमूर्तत्वं
चेति । चेतनत्वादयश्चत्वारः सामान्यगुणाः विशेषाः कथं संभवन्ति? तत्रोत्तरं
स्वजात्या समानाः विजात्या त एव विशेषाः, अत्र न दोषः । तत्र पुनरपि पृच्छति
कश्चित्, भो! मम स्वजातिविजात्योरेव ज्ञानं कथं, तदर्थज्ञानं? तत्रोत्तरं—भो! सा
स्वजातिः एकं लक्षणं त्रिकाले तदेव, या अनन्तजीवद्रव्यस्य (नां) सत्ता परस्परं
चैतन्यलक्षणेन स्वजातिस्तथैव रूपरसगन्धस्पर्शैः परमाणवोऽपि । जीवद्रव्यस्या-
पेक्षयान्यद्रव्यं विजातीयम् । तत्र पुनरप्याशङ्कं करोति कश्चित्, भो! जीवस्य
ज्ञानदर्शनद्वयमप्युक्तं तथा चेतनत्वं च, अत्र को विशेषः ? तत्रोच्यते चेतनत्वं
सामान्यलक्षणं, तत् ज्ञानदर्शनात्मकम् । चेतना सर्वत्र प्राप्यते यस्मात् ज्ञानचेतना
दर्शनचेतना सहितः संसारीजीवः तथा सिद्धोपि वर्तते, ततः चेतनस्वभावस्य कुत्रापि

नाशो न, तस्मात् चेतनत्वं सामान्यम्। एवं ज्ञानदर्शन-सुखवीर्याः (णि) सम्यक्स्वभावे एव तस्मादेतानि लक्षणानि पृथक् पृथक् उक्तानि पुनरुक्तदोषो नात्र। स्वजात्यपेक्षया= द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया।

सूत्रार्थ—अन्त के चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व और अमूर्तत्व ये चार गुण स्वजाति की अपेक्षा से सामान्य गुण तथा विजाति की अपेक्षा से विशेष गुण कहे जाते हैं।

सूत्र ९, १० व ११ की टीका में इसका विशेष कथन है।

॥ इस प्रकार गुणाधिकार समाप्त हुआ॥

पर्याय अधिकार:

पर्याय का लक्षण और उसके भेद -

गुणविकाराः पर्यायास्ते द्वेधा अर्थव्यंजनपर्यायभेदात्॥१५॥^१

सूत्रार्थ—गुणों के विकार को पर्याय कहते हैं। वे पर्यायें दो प्रकार की हैं—१. अर्थ पर्याय, २. व्यंजन पर्याय।

विशेषार्थ—परिणाम अर्थात् परिणामन को विकार कहते हैं। कहा भी है—“परिणाम अह वियारं ताणं तं पज्जयं दुविहं॥” (नयचक्र गाथा१७) अर्थात् परिणाम या विकार को पर्याय कहते हैं और वे पर्यायें दो प्रकार की हैं।

“गुणद्वारेणान्वयरूपायाः एकत्वप्रतिपत्तेर्निबंधनं कारणभूतं गुणपर्यायः॥” (पंचा. गाथा१६ टीका)

अर्थात् गुणों के द्वारा अन्वयरूप एकता के ज्ञान का कारण जो पर्याय हो, वह गुण पर्याय है। जैसे वर्ण गुण की हरी पीली आदि पर्याय होती हैं, हर एक पर्याय में वर्णगुण की एकता का ज्ञान है, इससे यह गुण पर्याय है।

अर्थपर्याय सूक्ष्म होती है, क्षण क्षण में नाश होने वाली तथा वचनों के अगोचर होती है। व्यंजन पर्याय स्थूल होती है, चिरकाल तक रहती है, वचन के गोचर तथा छद्मस्थों की दृष्टि का विषय भी होती है।

सुहुमा अवायविसया खणखड्गो अत्थपज्जया दिट्ठा।

वंजणपज्जाया पुण थूला गिरगोयरा चिरविवत्था॥२५॥

(वसुनन्दि श्रावकाचार)

१. सूत्र १५ व १६ दिल्ली की प्रति ३१/१०४ के अनुसार है।

अर्थ—पर्याय के दो भेद हैं—अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्याय। इनमें अर्थ पर्याय सूक्ष्म है, ज्ञान का विषय है, शब्दों से नहीं कही जा सकती और क्षण क्षण में नाश होती रहती है। किन्तु व्यंजन पर्याय स्थूल है, शब्दगोचर है अर्थात् शब्दों द्वारा कही जा सकती है और चिरस्थायी है।

“**तत्रार्थपर्यायाः सूक्ष्माः क्षणक्षयिणस्तथाऽवाग्गोचरा विषया भवन्ति। व्यंजनपर्यायाः पुनः स्थूलाश्चिरकालस्थायिनो वाग्गोचराश्छद्मस्थदृष्टि विषयाश्च भवन्ति। समयवर्तिनोऽर्थपर्याया भण्यन्ते चिरकालस्थायिनो व्यंजनपर्याया भण्यन्ते इति कालकृतभेदः।**”
(पंचास्तिकाय गाथा १६ टीका)

अर्थ—अर्थ पर्याय सूक्ष्म है, प्रतिक्षण नाश होने वाली है तथा वचन के अगोचर है। और व्यंजन पर्याय स्थूल होती है, चिरकाल तक रहने वाली, वचनगोचर व अल्पज्ञानी को दृष्टिगोचर भी होती है। अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्यायों में कालकृत भेद है क्योंकि समयवर्ती अर्थ पर्याय है और चिरकाल स्थायी व्यंजन पर्याय है।

ज्ञानार्णव में भी कहा है—

मूर्तो व्यंजनपर्यायो वाग्गम्योऽनश्वरः स्थिरः।

सूक्ष्मः प्रतिक्षणध्वंसी पर्यायश्चार्थसंज्ञिकः॥६/४५॥

अर्थ—व्यंजनपर्याय मूर्तिक है, वचन के गोचर है, अनश्वर है, स्थिर है और अर्थपर्याय सूक्ष्म है, क्षणविध्वंसी है।

द्रव्य-पर्यायें और गुण-पर्यायें दोनों ही अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय के भेद से दो-दो प्रकार की होती हैं। इन पर्यायों का कथन सूत्रकार स्वयं करेंगे।

अर्थ-पर्यायों के भेद प्रतिभेदों का कथन किया जाता है—

अर्थपर्यायास्ते द्वेधा स्वभावविभावपर्यायभेदात्॥१६॥^१

टिप्पण—स्वभावपर्यायाः सर्वद्रव्येषु भवन्ति, विभावपर्याया जीव-पुद्गलयोश्च भवन्ति।

सूत्रार्थ—अर्थपर्याय के दो प्रकार हैं—१. स्वभावार्थपर्याय, २. विभावार्थ-पर्याय।

१. सूत्र १५ व १६ दिल्ली की प्रति ३१/१०४ के अनुसार है।

विशेषार्थ—स्वभावपर्याय सर्वद्रव्यों में होती है किन्तु विभावपर्याय जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों में ही होती है, क्योंकि ये दो द्रव्य ही बंध अवस्था को प्राप्त होते हैं।

सम्भावं खु विहावं दव्वाणं पज्जयं जिणुद्धिं।

सव्वेसिं च सहावं विब्भावं जीवपुद्गलाणं च॥१८॥

दव्वगुणाण सहावा पज्जायं तह विहावदो पेयं।

जीवे जीवसहावा ते वि विहावा हु कम्मकदा॥१९॥

पुगलदव्वे जो पुण विब्भाओ कालपेरिओ होदि।

सो णिद्धरुक्खसहिदो बंधो खलु होइ तस्सेव ॥२०॥ (नयचक्र)

अर्थात्—जिनेन्द्र भगवान ने द्रव्यों की स्वभावपर्याय और विभाव पर्याय कहीं हैं। सर्वद्रव्यों में स्वभावपर्यायें होती हैं, किन्तु जीव और पुद्गलों में विभावपर्यायें भी होती हैं। द्रव्य और गुणों में स्वभावपर्याय भी होती है और विभावपर्याय भी होती हैं। जीव में जीवत्वरूप स्वभावपर्यायें होती हैं और कर्मकृत विभावपर्यायें होती हैं। पुद्गल में विभावपर्यायें कालप्रेरित होती हैं तो स्निग्ध व रूक्षगुण के कारण बंधरूप होती हैं।

“कम्मोपाधिविवज्जिय पज्जाया ते सहावमिदि भणिदा॥”

(नियमसार गाथा १५)

अर्थात्—जो पर्यायें कर्मोपाधि से रहित हैं वे स्वभावपर्यायें हैं।

अर्थपर्याय का कथन -

अगुरुलघुविकाराः स्वभावार्थपर्यायास्ते द्वादशधा

षड्वृद्धिरूपाः षड्ढानिरूपाः; अनन्तभागवृद्धिः,

असंख्यातभागवृद्धिः, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धिः,

असंख्यातगुणवृद्धिः, अनन्तगुणवृद्धिः, इति षड्वृद्धिः, तथा

अनन्तभागहानिः, असंख्यातभागहानिः, संख्यातभागहानिः,

संख्यातगुणहानिः, असंख्यातगुणहानिः, अनन्तगुणहानिः, इति

षड् हानिः। एवं षट्वृद्धिषड्ढानिरूपा ज्ञेयाः॥१७॥^१

१. सूत्र नं० १७ दिल्ली की प्रति ३१/१०४ के अनुसार है।

सूत्रार्थ—अगुरुलघुगुण का परिणमन स्वाभाविक अर्थपर्यायें हैं। वे पर्यायें बारह प्रकार की हैं, छह वृद्धिरूप और छह हानिरूप। अनन्तभाग वृद्धि, असंख्यातभाग वृद्धि, संख्यातभाग वृद्धि, संख्यातगुण वृद्धि, असंख्यातगुण वृद्धि, अनन्तगुण वृद्धि ये छह वृद्धिरूप पर्यायें हैं। अनन्तभाग हानि, असंख्यातभाग हानि, संख्यातभाग हानि, संख्यातगुण हानि, असंख्यातगुण हानि, अनन्तगुण हानि, ये छह हानिरूप पर्यायें हैं। इस प्रकार छह वृद्धिरूप और छह हानिरूप पर्यायें जाननी चाहिए।

विशेषार्थ—प्रत्येक द्रव्य में आगमप्रमाण से सिद्ध अनन्त अविभाग-प्रतिच्छेद वाला अगुरुलघुगुण स्वीकार किया गया है। जिसका छह स्थान-पतित वृद्धि और हानि के द्वारा वर्तन होता रहता है। अतः इन धर्मादि द्रव्यों का उत्पाद-व्यय स्वभाव से होता रहता है।^१

प्राकृत नयचक्र में स्वभावपर्याय का कथन निम्न प्रकार किया गया है—

अगुरुलहुगा अणंता, समयं समुब्भवा जे वि।

द्व्वाणं ते भणिया, सहावगुणपज्जया जाण॥२२॥

अर्थात् अगुरुलघुगुण अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद वाला है, उस अगुरु-लघुगुण में प्रति समय पर्यायें उत्पन्न होती रहती हैं। अगुरुलघुगुण की पर्यायों को शुद्ध द्रव्यों की स्वभाव पर्यायें जाननी चाहिए।

प्रत्येक शुद्ध द्रव्य में अनन्त गुण होते हैं। उन अनन्त गुणों में एक अगुरुलघुगुण भी होता है जिसमें अनन्त अविभाग-प्रतिच्छेद होते हैं। उस अगुरुलघुगुण में ही नियत क्रम से अविभाग-प्रतिच्छेदों की ६ प्रकार की वृद्धि और ६ प्रकार की हानि रूप प्रति समय परिणमन होता रहता है। यह प्रतिसमय का परिणमन ही शुद्ध द्रव्यों की स्वभाव पर्यायें हैं।

श्री पंचास्तिकाय गाथा १६ की टीका में श्री १०८ जयसेन आचार्य ने भी कहा है—“**स्वभावगुणपर्याया अगुरुलघुकगुणषट्हानिवृद्धिरूपाः सर्वद्रव्यसाधारणाः।**”

अगुरुलघुगुण षट्हानि षट्वृद्धि रूप सर्वद्रव्यों में साधारण स्वभाव गुण

१. ‘स्वनिमित्तस्तावदनन्तानामगुरुलघुगुणानामागमप्रामाण्यदभ्युपगम्यानानां षट्स्थानपतितया वृद्धया हान्या च प्रवर्तमानानां स्वभावादेतेषामुत्पादो व्ययश्च।’ (सर्वार्थसिद्धि ५/७)

पर्याय हैं। इस ही ग्रंथ में अगुरुलघुगुण का स्वरूप निम्न प्रकार बताया गया है—
 सूक्ष्मावागोचराः प्रतिक्षणं वर्तमाना
 आगमप्रमाणादभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः।

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं, हेतुभिर्नैव हन्यते।

आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं, नान्यथावादिनो जिनाः॥

अर्थ—जो सूक्ष्म, वचन के अगोचर और प्रतिसमय में परिणमन-शील अगुरुलघु नाम के गुण हैं, उन्हें आगमप्रमाण से स्वीकार करना चाहिए। जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए जो सूक्ष्म तत्त्व हैं वे हेतुओं अर्थात् तर्क के द्वारा खण्डित नहीं हो सकते इसलिए जो सूक्ष्म तत्त्व हैं वे आज्ञा (आगम) से सिद्ध हैं, अतः उनको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि जिनेन्द्र भगवान अन्यथावादी नहीं होते हैं। अर्थात् जिस प्रकार से कथन किया गया है उसी प्रकार से उन्होंने जाना है। अतः वैसा ही पदार्थ है।

यद्यपि अगुरुलघुगुण सामान्य गुण है, सर्व द्रव्यों में पाया जाता है तथापि संसार अवस्था में कर्म परतन्त्र जीवों में उस स्वाभाविक अगुरुलघु-गुण का अभाव है। यदि कहा जाए कि स्वभाव का विनाश मानने पर जीव द्रव्य का विनाश प्राप्त होता है, क्योंकि लक्षण के विनाश होने पर लक्ष्य का विनाश होता है, ऐसा न्याय है, सो भी बात नहीं है अर्थात् अगुरुलघुगुण के विनाश होने पर भी जीव का विनाश नहीं होता है, क्योंकि ज्ञान और दर्शन को छोड़कर अगुरुलघुत्व जीव का लक्षण नहीं है, चूँकि वह आकाश आदि अन्य द्रव्यों में भी पाया जाता है।^१ अनादि काल से कर्म नोकर्म से बंधे हुए जीवों का कर्मोदय कृत अगुरुलघुत्व है किन्तु मुक्त जीवों के कर्म नोकर्म की अत्यंत निवृत्ति हो जाने पर स्वाभाविक अगुरुलघुगुण का आविर्भाव होता है।^२

१. “संसारावत्थाए कम्मपरतंतम्मि तस्साभावा ण च सहावविणासे जीवस्स विणासो, लक्खणविणासे लाक्खविणास्सणाइपत्तादो। ण च णाणदंसणे मुच्चा जीवस्स अगुरुलहुतं लक्खणं, तस्स आयासादीसु वि उवलंभादो।” (धवल पु० ६ पृ०५८)

२. “मुक्त जीवानां कथमिति चेत् ? अनादिकर्मनोकर्मसम्बन्धानां कर्मोदयकृतम-गुरुलघुत्वम्, तदत्यन्तविनिवृत्तौ तु स्वाभाविकमाविर्भवति।” (राजवार्तिक, अ०८ सूत्र ११, वार्तिक १२)

छह वृद्धि व हानि में अनन्त का प्रमाण सम्पूर्ण जीव राशि, असंख्यात का प्रमाण असंख्यात लोक और संख्यात का प्रमाण उत्कृष्ट संख्यात जानना चाहिए।^१

मान लो अगुरुलघुगुण के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण १२००० है और संख्यात का प्रमाण ३, असंख्यात का प्रमाण ४, अनन्त का प्रमाण ५ है। १२००० को ५ का भाग देने पर लब्ध २४०० प्राप्त होता है जो १२००० का अनन्तवाँ भाग है। इस अनन्तवें भाग रूप २४०० को १२००० में जोड़ने पर १४४०० अनन्तभाग वृद्धि प्राप्त होती है। १२००० को असंख्यातरूप ४ का भाग देने पर ३००० प्राप्त होता है जो असंख्यातवाँ भाग है उस असंख्यातवें भाग रूप ३००० को १२००० में जोड़ने पर $(१२०००+३०००) = १५०००$ प्राप्त होता है जो असंख्यातवें भाग वृद्धि रूप है। १२००० को संख्यातरूप ३ का भाग देने पर ४००० प्राप्त होता है। इस संख्यातवें भाग रूप ४००० को १२००० में जोड़ने पर १६००० प्राप्त होता है जो संख्यातवें भाग वृद्धिरूप है। १२००० को संख्यातरूप ३ से गुणा करने पर ३६००० संख्यात गुण वृद्धि प्राप्त होती है। १२००० को असंख्यातरूप ४ से गुणा करने पर ४८००० असंख्यात गुणवृद्धि प्राप्त होती है। १२००० को अनन्तरूप ५ से गुणा करने पर ६०००० अनन्तगुणवृद्धि प्राप्त होती है। ये छह वृद्धि हैं।

१२००० को अनन्तरूप ५ से भाग देने पर २४०० प्राप्त होता है जो अनन्तवाँ भाग है। इस अनन्तवें भाग रूप २४०० को १२००० में से घटाने पर $(१२०००-२४००) ९६००$ प्राप्त होते हैं जो अनन्तवें भाग हानि रूप हैं। १२००० को असंख्यात रूप ४ का भाग देने पर ३००० प्राप्त होते हैं जो असंख्यातवें भाग हैं। इस असंख्यातवें भाग रूप ३००० को १२००० में से घटाने पर शेष ९००० रहते हैं जो असंख्यातवें भाग हानि रूप है। १२००० को संख्यातरूप ३ का भाग देने पर ४००० प्राप्त होते हैं। संख्यातवें भाग रूप ४००० को १२००० में से घटाने पर ८००० शेष रहते हैं जो संख्यातवें भाग हानि रूप है। १२००० हजार को संख्यातरूप ३ से भाग देने पर ४००० लब्ध होता है। १२००० से घटकर मात्र ४००० शेष रह जाना संख्यातगुण हानि है। १२००० को असंख्यात रूप का ४ का भाग देने पर ३००० लब्ध होता है। १२००० से घटकर मात्र ३००० शेष रह जाना असंख्यात गुणहानि है। १२०००

१. धवल, पु०१२, पृ०१५१-१५७

को अनन्तरूप ५ का भाग देने पर २४०० लब्ध आते हैं। मात्र ९६०० रह जाना अनन्तगुण हानि है। इस प्रकार ये छह हानियाँ हैं।

अंगुल के असंख्यातवें भाग बार अनन्तवें भाग वृद्धि होने पर एक बार असंख्यातवें भाग वृद्धि होती है। पुनः अंगुल के असंख्यातवें भाग बार अनन्तवें भाग वृद्धि होने पर एक बार संख्यातवें भाग वृद्धि होती है। इस प्रकार अंगुल के असंख्यातवें भाग बार असंख्यातवें भाग वृद्धि होने पर एक बार संख्यातवें भाग वृद्धि होती है। पुनः पूर्वोक्त प्रकार अंगुल के असंख्यातवें भाग बार असंख्यातवें भाग वृद्धि होने पर एक बार संख्यातवें भाग वृद्धि होती है। इस प्रकार अंगुल के असंख्यातवें भाग बार संख्यातवें भाग वृद्धि होने पर एक संख्यातगुणी वृद्धि होती है। पूर्वोक्त प्रकार अंगुल के असंख्यातवें भाग बार संख्यातगुणी वृद्धि होने पर एक बार असंख्यातगुण वृद्धि होती है। अंगुल के असंख्यातवें भाग बार असंख्यातगुणी वृद्धि होने पर एक बार अनन्तगुण वृद्धि होती है। इस प्रकार छह वृद्धि और छह हानियाँ होती हैं।

एक षट्स्थान पतित वृद्धि में, अनन्तगुण वृद्धि एक होती है। असंख्यातगुण वृद्धि कांडक प्रमाण अर्थात् अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है। संख्यातगुण वृद्धि कांडक (कांडक+१)=(कांडक^२+कांडक) प्रमाण होती है। संख्यात भागवृद्धि (कांडक+१)(कांडक^२+कांडक)=(कांडक^३+२कांडक^२+कांडक) प्रमाण होती है असंख्यात भाग वृद्धि (कांडक+१)(कांडक^३+२कांडक^२+कांडक)=(कांडक^४+३कांडक^३+३कांडक^२+कांडक) प्रमाण होती है। अनन्तभाग वृद्धि (कांडक+१)(कांडक^४+३कांडक^३+३कांडक^२+कांडक)=(कांडक^५+४कांडक^४+६कांडक^३+४कांडक^२+कांडक) प्रमाण होती है।^१

इसी प्रकार एक षट्स्थान पतित हानि में अनन्तगुणहानि, असंख्यातगुण हानि, संख्यातगुण हानि, संख्यातभाग हानि, असंख्यातभाग हानि, अनन्तभाग-हानि का प्रमाण जानना चाहिए।

अनन्तभाग वृद्धि उर्वक (३) संज्ञा है, असंख्यातभाग वृद्धि की चतुरंक (४), संख्यातभाग वृद्धि की पंचांक (५), संख्यातगुण वृद्धि की षडंक (६), असंख्यातगुण वृद्धि की सप्तांक (७) और अनन्तगुण वृद्धि की अष्टांक (८)

संज्ञा जाननी चाहिए।^१

**विभावार्थपर्यायाः षड्विधाः मिथ्यात्वकषायरागद्वेषपुण्यपाप-
रूपाऽध्यवसायाः ॥१८॥^२**

सूत्रार्थ—विभावार्थपर्याय छह प्रकार की हैं (१) मिथ्यात्व (२) कषाय (३) राग (४) द्वेष (५) पुण्य और (६) पाप। ये छह अध्यवसाय (परिणाम) विभाव अर्थ पर्यायें हैं।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व कषाय आदि रूप जीव के परिणामों में कर्मोदय के कारण जो प्रतिसमय हानि या वृद्धि होती रहती है, वह विभाव अर्थ पर्याय है। यह हानि या वृद्धि अनन्तवें भाग आदिरूप षट्स्थानगत ही होगी, क्योंकि कोई भी हानि या वृद्धि इन छह स्थानों से बाहर नहीं हो सकती, इन छह स्थानों के अन्तर्गत ही होती है। श्री जयसेन आचार्य ने भी जीव की अशुद्ध पर्याय का कथन करते हुए लिखा है—

“अशुद्धार्थपर्याया जीवस्य षट्स्थानगतकषायहानिवृद्धि-विशुद्धि-संक्लेशरूपशुभाशुभलेश्यास्थानेषु ज्ञातव्याः।” (पंचास्तिकाय गाथा १६ टीका)

अर्थ—कषायों की षट्स्थानगत हानि वृद्धि होने से विशुद्ध या संक्लेश रूप शुभ अशुभ लेश्याओं के स्थानों में जीव की अशुद्ध (विभाव) अर्थ पर्यायें जाननी चाहिए।

“पुद्गलस्य विभावार्थपर्याया द्व्यणुकादिस्कंधेषु वर्णान्तरादि-परिणमनरूपाः।” (पंचास्तिकाय गाथा १६ टीका)

अर्थ—द्विअणुक आदिक स्कंधों में वर्णादि से अन्य वर्णादि होने रूप पुद्गल की विभाव अर्थ पर्यायें हैं।

इस प्रकार जीव के लेश्यारूप परिणामों में और पुद्गल-स्कंधों के वर्णादि में जो प्रतिक्षण परिणमन होता है वह विभाव अर्थ पर्याय है।

॥ इति अर्थ पर्यायः ॥

(व्यंजनपर्यायास्ते द्वेधा स्वभावविभावपर्यायभेदात्^३)

१. धवल पु०१२ पृ०१७०। २. सूत्र नं० १८ बूँदी की प्रति के अनुसार है।

३. यह सूत्र यद्यपि किसी भी प्रति में नहीं है किन्तु प्रकरणानुसार यह सूत्र होना चाहिए।

अर्थ—स्वभावव्यंजनपर्याय और विभावव्यंजनपर्याय के भेद से व्यंजनपर्याय दो प्रकार की है।

विशेषार्थ—द्रव्य-व्यंजनपर्याय और गुण-व्यंजनपर्याय में प्रत्येक स्वभाव और विभाव के भेद से दो दो प्रकार की है। संसारी जीव और पुद्गलस्कंध में ही विभाव पर्याय होती है।

जीव की विभाव-द्रव्य-व्यंजनपर्याय -

विभावद्रव्यव्यञ्जन-पर्यायाश्चतुर्विधा नरनारकादिपर्यायाः

अथवा चतुरशीतिलक्षा योनयः॥१९॥

टिप्पण—विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाः = जीवपुद्गलयोर्विभावपर्याया भवन्ति। द्रव्यस्य व्यंजनपर्यायाः द्रव्यव्यंजनपर्यायाः, विभावाश्च ते व्यंजनपर्यायाः। अथवा विभावस्वभावपरिणतं यच्च तद्द्रव्यं च तस्य व्यंजनपर्यायाः। स्वभावादन्वथाभवनं विभावः। यच्च तद्द्रव्यं च तस्य व्यंजनानि लक्षणानि चिह्नानि वा, तेषां पर्यायाः परिणमनानि विभावद्रव्य-व्यंजनपर्यायाः।

सूत्रार्थ—नर, नारक आदि रूप चार प्रकार की अथवा चौरासी लाख योनि रूप जीव की विभाव द्रव्य-व्यंजनपर्यायें हैं।

विशेषार्थ—जीव और पुद्गलों में ही विभाव पर्यायें होती हैं। द्रव्य की व्यंजन पर्याय द्रव्य व्यंजनपर्याय है। विभावरूप परिणत द्रव्य की व्यंजनपर्याय विभावद्रव्यव्यंजनपर्याय है। स्वभाव से अन्यथारूप होना विभाव है। द्रव्य के लक्षण या चिन्ह को व्यंजन कहते हैं। परिणमन को पर्याय कहते हैं। नारक, तिर्यच, मनुष्य और देव ये चारों जीव की द्रव्य पर्यायें हैं, क्योंकि ये जीव के किसी गुण की पर्यायें नहीं हैं। ये पर्यायें गति व आयु-कर्मोदयजनित हैं और जीव स्वभाव का पराभव करके उत्पन्न होती हैं इसलिए विभाव पर्यायें हैं। श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने भी कहा है—

कम्मं गामसमक्खं सभावमध अप्पणो सहावेण।

अभिभूय णरं तिरियं णेरइयं वा सुरं कुणदि॥११७ ॥

(प्रवचनसार)

अर्थ—नाम संज्ञा वाला कर्म अपने स्वभाव से जीव के स्वभाव का पराभव करके मनुष्य, तिर्यच, नारक अथवा देव पर्यायों को करता है।

“जीवस्य भवांतरगतस्य शरीरनोकर्मपुद्गलेन सह मनुष्य-

देवादिपर्यायोत्पत्तिः चेतनजीवस्या-चेतनपुद्गलद्रव्येण सह मेलापकाद-समानजातीयः द्रव्यपर्यायो भण्यते। एते समानजातीया असमान-जातीयाश्चानेकद्रव्यात्मिकैकरूपा द्रव्यपर्याया जीव-पुद्गलयोरेव भवन्ति अशुद्धा एव भवन्ति। कस्मादिति चेत् ? अनेकद्रव्याणां परस्पर-संश्लेषरूपेण सम्बन्धात्।” (पंचास्तिकाय गाथा १६ टीका)

अर्थ—जीव जब दूसरी गति को जाता है तब नवीन शरीररूप नोकर्म पुद्गलों के साथ सम्बन्ध को प्राप्त करता है, उससे मनुष्य, देव, तिर्यच, नारक पर्यायों की उत्पत्ति होती है। चेतनरूप जीव के साथ अचेतनरूप पुद्गल के मिलने से जो मनुष्यादि पर्याय हुई यह असमानजाति द्रव्य-पर्याय है। ये समानजातीय तथा असमानजातीय अनेक द्रव्यों की एकरूप द्रव्य-पर्यायें पुद्गल और जीव में ही होती हैं। ये अशुद्ध होती हैं, क्योंकि अनेक द्रव्यों के परस्पर संश्लेषसम्बन्ध से उत्पन्न होती हैं।

जीव की विभावगुणव्यंजनपर्याय-

विभावगुणव्यंजनपर्याया मत्यादयः॥२०॥

टिप्पण—“स्थूलव्यंजनपर्यायो वाग्गम्यो नश्वरः स्थिरः। सूक्ष्मः प्रतिक्षणध्वंसीपर्यायश्चार्थगोचराः।”

मत्यादयः=मति श्रुत अवधि कुमति कुश्रुत कुअवधि मनःपर्यय ज्ञानानि, चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि।

सूत्रार्थ—मतिज्ञान आदिक जीव की विभावगुणव्यंजनपर्यायें हैं।

विशेषार्थ—स्थूल, वचनगोचर, नाशवान और स्थिर पर्यायें व्यंजनपर्यायें हैं। सूक्ष्म और प्रतिक्षण नाश होने वाली पर्यायें अर्थपर्यायें हैं। कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ये सात ज्ञान; चक्षु, अचक्षु और अवधि ये तीन दर्शन; ये सब जीव की विभावगुण-व्यंजनपर्यायें हैं। इन सातों उपयोगों का जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्त है, अतः ये व्यंजनपर्यायें हैं। ये सातों उपयोग आवरणकर्म के क्षयोपशम के अधीन हैं अतः ये विभावपर्यायें हैं। ज्ञानगुण तथा दर्शनगुण की क्षायोपशमिक पर्यायें हैं, अतः गुण पर्यायें हैं। इस प्रकार मतिज्ञान आदिक जीव की विभावगुणव्यंजन पर्यायें हैं।

जीव की स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय-

स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्यायाश्चरमशरीरात्^१ किञ्चिन्यूनसिद्धपर्यायाः॥२१॥

टिप्पण—त्रैलोकप्रज्ञप्तौ उक्तं -

“दीहत्तं वाहल्लं चरिमभवे जस्स जारिसं ठाणं।
तत्तोतिभागहीणं ओगाहणसव्वसिद्धाणं॥”

तन्वायामविस्तारौ प्राणिनां पूर्व जन्मनि तत् त्रिभागोनसंस्थानं जाते सिद्धत्व-
पर्याये । गतसिक्थमूषाया आकारेणोपलक्षिताः अमूर्तिनः विराजन्ते केवलज्ञानमूर्तयः ।

सूत्रार्थ—अन्तिम शरीर से कुछ कम जो सिद्ध पर्याय है, वह जीव की
स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय है ।

विशेषार्थ—तिलोयपण्णत्ती अधिकार ९ के सूत्र ९ व १० में सिद्धों की
अवगाहना का कथन है । इन दो गाथाओं द्वारा दो भिन्न मतों का उल्लेख किया
गया है । इनमें से गाथा १० टिप्पण में उद्धृत की गई है जिसका अर्थ है—
“अन्तिम भव में जिसका जैसा आकार, दीर्घता और बाहुल्य हो उससे तृतीय
भाग से कम सब सिद्धों की अवगाहना होती है ।” अर्थात् पूर्व जन्म में शरीर की
जितनी लम्बाई-चौड़ाई होती है उसके तीसरे भाग से न्यून सिद्ध पर्याय की
अवगाहना होती है । किन्तु गाथा ९ में कहा है—लोक विनिश्चय ग्रन्थ में लोक
विभाग में सब सिद्धों की अवगाहना का प्रमाण कुछ कम चरम शरीर के समान
कहा गया है ।”^२

इसका दृष्टान्त इस प्रकार है—मोम रहित मूसा के (साँचे के) बीच के
आकार की तरह अन्तिम शरीर के कुछ कम आकार वाले केवलज्ञानमूर्ति
अमूर्तिक सिद्ध भगवान विराजते हैं ।^३ यह सिद्धपर्याय जीव की शुद्धपर्याय है
इसलिए स्वभावपर्याय है । किसी विवक्षित गुण की पर्याय नहीं है इसलिए
द्रव्यपर्याय है । सिद्धपर्याय सादि अनन्त पर्याय है इसलिए व्यंजनपर्याय है ।
सिद्धपर्याय की अवगाहना अन्तिम शरीर से कुछ न्यून है ।

१. ‘चरमशरीराकारात्’ ऐसा पाठ बूँदी प्रति में है ।
२. लोयविणिच्छयगंथे लोयविभागम्मि सव्वसिद्धाणं।
ओगाहणपरिमाणं भणिदं किंचूण चरिमदेहसमो॥१९॥ (ति० प.) ।
३. “किंचिदून चरमशरीराकारेण गतसिक्थमूषागर्भाकारवत् पुरुषाकारः ।” (बृहद्द्रव्यसंग्रह
गाथा ५१ टीका)

जीव की स्वभाव गुण व्यंजनपर्याय -

स्वभावगुणव्यंजनपर्याया अनन्तचतुष्टयरूपा जीवस्य॥२२॥

सूत्रार्थ—अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य इन अनन्तचतुष्टयरूप जीव की स्वभावगुण-व्यंजनपर्याय है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरण कर्म के अत्यन्त क्षय से अनन्तज्ञान, दर्शनावरण कर्म के अत्यन्त क्षय से अनन्तदर्शन, मोहनीय कर्म के अत्यन्त क्षय से अनन्तसुख,^१ अन्तराय कर्म के अत्यन्त क्षय से अनन्तवीर्य, इस प्रकार चार घातिया कर्मों के क्षय से अनन्तचतुष्टय रूप जीव की स्वभावगुणव्यंजनपर्याय उत्पन्न होती है। इन अनन्तचतुष्टय का कभी नाश नहीं होगा, अर्थात् चिरकाल स्थायी है, इसलिए यह व्यंजनपर्याय है। कर्मोपाधि रहित पर्याय है अतः स्वभावपर्याय है। ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य गुणों की पर्याय है अतः गुण पर्याय। कहा भी है—

पाणं दंसण सुह वीरियं च जं उहयकम्मपरिहीणं।

तं सुद्धं जाण तुमं जीवे गुणपज्जय सव्वं ॥२६॥ (नयचक्र)

दोनों प्रकार के कर्मों से रहित शुद्ध जीव के अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य जीव की स्वभावगुणव्यंजनपर्याय है।

पुद्गल की विभावरूपव्यंजनपर्याय -

पुद्गलस्य तु द्व्यणुकादयो विभावरूपव्यंजनपर्यायाः॥२३॥

सूत्रार्थ—द्वि-अणुकादि स्कंध पुद्गल की विभावरूपव्यंजनपर्याय हैं।

विशेषार्थ—यहाँ पर 'तु' शब्द का अर्थ 'और' है और पुद्गल की विभावरूपव्यंजनपर्यायें द्वि-अणुक आदि स्कंध हैं। शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप, उद्योत आदि भी पुद्गल की विभावरूप-व्यंजनपर्यायें हैं।

कहा भी है—

सद्धो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेदतमछाया।

उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया॥१६॥

(बृहद्द्रव्यसंग्रह)

१. 'सौख्यं च मोहक्षयात्।' (पद्मनन्दि पंचविंशतिका ८/६)

तत्सुखं मोहक्षयात्। (तत्त्वार्थवृत्ति ९/४४)

अर्थ—शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम (अंधकार), छाया, उद्योत और आतप ये सब पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं।

“शब्दादन्येऽपि आगमोक्तलक्षणा आकुंचनप्रसारणदधिदुग्धादयो विभावव्यंजनपर्याया ज्ञातव्या।” (बृ. द्र. सं. गाथा १६ टीका)

अर्थात्—शब्द आदि के अतिरिक्त शास्त्रोक्त अन्य भी, जैसे सिकुड़ना, फैलना, दही, दूध आदि विभावगुणव्यंजनपर्यायें जाननी चाहिए।

पुद्गल की विभाव-गुण-व्यंजनपर्याय-

रसरसान्तरगन्धगन्धान्तरादिविभावगुणव्यंजनपर्यायाः॥२४॥

सूत्रार्थ—द्वि-अणुक आदि स्कन्धों में एक वर्ण से दूसरे वर्णरूप, एक रस से दूसरे रसरूप, एक गंध से दूसरे गंधरूप, एक स्पर्श से दूसरे स्पर्शरूप होने वाला चिरकाल-स्थायी-परिणमन पुद्गल की विभावगुण-व्यंजनपर्याय है।

विशेषार्थ—द्वि-अणुक आदि स्कंध पुद्गल द्रव्य की अशुद्ध-पर्याय है। इस अशुद्ध पुद्गल द्रव्य के गुणों में जो परिणमन होता है वह विभाव-गुणपर्याय है। यदि वह परिणमन क्षणक्षयी है तो वह विभावगुण अर्थपर्याय है और यदि वह परिणमन चिरकाल स्थायी है तो वह विभाव-गुण-व्यंजनपर्याय है। इसी बात को श्री जयसेन आचार्य ने पंचास्तिकाय गाथा १६ की टीका में कहा है-

“पुद्गलस्य विभावार्थपर्याया द्व्यणुकादिस्कंधेषु वर्णान्तरादि परिणमनरूपाः, विभाव-व्यंजन-पर्यायाश्च पुद्गलस्य द्व्यणुकादि-स्कंधेष्वेव चिरकालस्थायिनो ज्ञातव्यः।”

पुद्गल की स्वभाव-द्रव्य-व्यंजनपर्याय-

अविभागिपुद्गलपरमाणुः स्वभावरद्रव्यव्यंजनपर्यायः॥२५॥

सूत्रार्थ—अविभागी पुद्गल परमाणु पुद्गल की स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन-पर्याय है।

विशेषार्थ—टिप्पण में आचारसार तीसरे अध्याय की गाथा १३ उद्धृत की है उसका यह अभिप्राय है कि-परमाणु पुद्गल का ऐसा अवयव (टुकड़ा) है, जो भेदा नहीं जा सकता अर्थात् परमाणु के टुकड़े नहीं हो सकते, इसलिए पुद्गल परमाणु अविभागी है उस पुद्गल परमाणु में स्निग्ध या रूक्ष गुण के

कारण परस्पर बंधने की शक्ति रहती है। परस्पर बंध हो जाने पर बहुप्रदेशी हो जाता है। अतः प्रचय शक्ति के कारण वह परमाणु भी कायवान् है। वह पुद्गल स्कंध के भेद से उत्पन्न होता है वह परमाणु चतुरस्र है अर्थात् लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई वाला है और इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता है।

‘अणवः परिमण्डलाः’^१ अर्थात् परमाणु गोल होता है। सबसे जघन्य अवगाहना गोल होती है। जीव की भी सबसे जघन्य अवगाहना वर्तुल-आकार अर्थात् गोल होती है।^२

श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने नियमसार में पुद्गल परमाणु का कथन इस प्रकार किया है—

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णोव इंदिए गेज्झं।

जं दव्वं अविभागी तं परमाणुं विआणाहि ॥२६॥

अर्थ—जिसका आदि, मध्य और अन्त एक है और जिसको इन्द्रियां ग्रहण नहीं कर सकतीं ऐसा जो अविभागी (विभाग रहित) पुद्गल द्रव्य है उसे परमाणु समझो।

‘भेदादणु’ ॥५/२७॥^३ इस सूत्र द्वारा यह बतलाया गया है कि परमाणु स्कंध के भेद से उत्पन्न होता है, अतः अनादि काल से अब तक परमाणु की अवस्था में ही रहने वाला कोई भी परमाणु नहीं है।^४

अपदेसो परमाणू पदेसमेत्तो य सयमसद्धो जो।

णिद्धो वा लुक्खो वा दुपदेसादित्तमणुहवदि॥१६३॥

(प्रवचनसार)

अर्थात् पुद्गल परमाणु अप्रदेश है (बहुप्रदेशी नहीं है), एक प्रदेशमात्र है, स्वयं अशब्द है, स्निग्धता या रूक्षता के कारण द्विप्रदेशादि स्कंधरूप बंध अवस्था का अनुभव करता है।

सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू।

सो सस्सदो असद्धो एक्को अविभागी मुत्तिभवो॥७७॥

१. महापुराण सर्ग २४ श्लोक १४८।

२. धवल पु०११ पृ० ३३-३५, सूत्र २० की टीका।

३. मोक्षशास्त्र।

४. न चानादि परमाणुनाम कश्चिदस्ति। राजवार्तिक ५/२५/१०

(पंचास्तिकाय)

अर्थ—स्कंध पर्यायों का जो अन्तिम भेद है वह परमाणु है, वह परमाणु विभाग के अभाव के कारण अविभागी है, एक प्रदेशी होने से एक है। मूर्तद्रव्यरूप से अविनाशी होने से नित्य है। रूपादि के परिणाम से उत्पन्न होने के कारण मूर्तिप्रभव है। शब्द परमाणु का गुण नहीं है किन्तु पुद्गल स्कंध रूप पर्याय है, अतः परमाणु अशब्द है।

एयपदेसो वि अणू गाणाखंधप्पदेसदो होदि।

बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सब्बण्हु॥२६॥

(बृहद् द्रव्यसंग्रह)

अर्थ—एकप्रदेशी भी परमाणु अनेक स्कन्धरूप बहुप्रदेशी हो सकता है, इसकारण सर्वज्ञ देव ने पुद्गल परमाणु को उपचार से काय कहा है।

परमाणु निरवयव भी है सावयव भी है। द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन करने पर दो परमाणुओं का कथंचित् सर्वात्मना समागम होता है, क्योंकि परमाणु निरवयव होता है। यदि परमाणु के अवयव होते हैं ऐसा माना जाए तो परमाणु को अवयवी होना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि अवयव के विभाग द्वारा अवयवों के संयोग का विनाश होने पर परमाणु का अभाव प्राप्त होता है पर ऐसा है नहीं, क्योंकि परमाणु रूपकारण का अभाव होने से सब स्थूल कार्यो (स्कंधों) का भी अभाव प्राप्त होता है। परमाणु के कल्पितरूप अवयव होते हैं, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि यदि उसके उपरिम, अधस्तन, मध्यम और उपरिमोपरिम भाग न हों तो परमाणु का भी अभाव प्राप्त होता है। ये भाग कल्पित रूप होते हैं, यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि इस तरह मानने पर अव्यवस्था प्राप्त होती है। इसलिए परमाणु को निरवयव होना चाहिए। निरवयव परमाणुओं से स्थूल कार्य की उत्पत्ति नहीं बनेगी, यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि निरवयव परमाणुओं के सर्वात्मना समागम से स्थूल कार्य (स्कंध) की उत्पत्ति होने में कोई विरोध नहीं आता। पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने पर दो परमाणुओं का कथंचित् एकदेशेन समागम होता है। परमाणु के अवयव नहीं होते, यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि परमाणु में ऊर्ध्वभाग, अधोभाग, मध्यभाग तथा उपरिमोपरिमभाग कल्पना के बिना भी उपलब्ध होते हैं। परमाणु के अवयव हैं इसलिए उसका सर्वत्र विभाग ही होना चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर तो सब वस्तुओं के

अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है। जिनका भिन्न-भिन्न प्रमाणों से ग्रहण होता है और जो भिन्न-भिन्न दिशा वाले हैं वे एक हैं यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर विरोध आता है। अवयवों से परमाणु नहीं बना है यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि अवयवों के समूहरूप ही परमाणु दिखाई देता है। अवयवों के संयोग का विनाश होना चाहिए यह भी कोई नियम नहीं है, क्योंकि अनादि संयोग के होने पर उसका विनाश नहीं होता।^१ इस प्रकार अविभागी पुद्गल-परमाणु द्रव्यार्थिकनय के अवलम्बन से निरवयव है और पर्यायार्थिक नय से सावयव है। पुद्गल परमाणु निरवयव ही है, ऐसा एकान्त नहीं है।

द्वि-अणुक आदि स्कंध कार्यों का उत्पादक होने से पुद्गल-परमाणु स्यात् कारण है, स्कंध भेद से उत्पन्न होता है, अतः स्यात् कार्य है। परमाणु से छोटा कोई भेद नहीं है, अतः स्यात् अन्त्य है, प्रदेश भेद न होने पर भी गुणादि भेद होने के कारण अन्त्य नहीं भी है। सूक्ष्म परिणमन होने से स्यात् सूक्ष्म है और स्थूल कार्य की उत्पत्ति की योग्यता रखने से स्यात् स्थूल भी है। द्रव्यता नहीं छोड़ता, अतः स्यात् नित्य है, स्कंधपर्याय को प्राप्त होता है और गुणों का विपरिणमन होने से स्यात् अनित्य है। अप्रदेशत्व की विवक्षा में एक रस, एक गंध, एक वर्ण और दो स्पर्श वाला है, अनेक प्रदेशी स्कंधरूप परिणमन की शक्ति होने से अनेक रस आदि वाला भी है। स्कंधरूपकार्य-लिंग से अनुमेय होने के कारण स्यात् कार्यलिंग है और प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय होने से कार्यलिंग नहीं भी है।^२ इस प्रकार परमाणु के विषय में अनेकान्त है।

यदि यह कहा जाये कि परमाणु अनादिकाल से अणु रहता है सो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि यदि परमाणु अपने अणुत्व को नहीं छोड़ता तो उससे स्कंधरूपकार्य भी उत्पन्न नहीं हो सकता।^३ इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्कंध अवस्था में परमाणु अणुरूप से नहीं रहता है किन्तु अणुत्व को छोड़कर स्कंधत्व को प्राप्त हो जाता है।

पुद्गल परमाणु-अवस्था में संश्लेष सम्बन्ध से रहित है, अतः परमाणु

१. धवल पु० १४ पृ० ५६-५७

२. तत्त्वार्थराजवार्तिक अ० ५ सू० २५ वार्तिक १६

३. न हि तस्यानादिपारिणामिकाण्ववस्थस्य कार्यमस्ति, तत् स्वभावाविनिवृत्तेः। (तत्त्वार्थ राजवार्तिक ५/२५/८)

अवस्था शुद्ध है, इसीलिए परमाणु स्वभाव-पर्याय है। परमाणु किसी गुण की पर्याय नहीं है अतः द्रव्यपर्याय है। परमाणु-रूप पर्याय चिरकालस्थायी भी है इसलिए परमाणु व्यंजन पर्याय है। अतः परमाणु को पुद्गल की स्वभावद्रव्यव्यंजन पर्याय कहा गया है।

पुद्गल की स्वभावगुणव्यंजनपर्याय -

वर्णगंधरसैकैकाविरूद्धस्पर्शद्वयं

स्वभावगुणव्यंजनपर्यायाः॥२६॥

टिप्पण—उक्तं च आचारसारेः -

अणुश्च पुद्गलोऽभेद्यावयवः प्रचयशक्तितः।

कायश्च स्कन्धभेदोत्थश्चतुरस्रस्त्वतीन्द्रियः॥१३॥

बिभ्रदेकं रसं गन्धं वर्णं शीतचतुष्टये।

स्पर्शं चाबाधकौ स्पर्शावेकदा सर्वदेदृशः॥१४॥

अभेद्यः=भेत्तुमशक्यः। प्रचयशक्तितः=स्कन्धरूपेण परिणमनशक्तेः। स्कन्धभेदोत्थः=पृथक्भावजनितः। चतुरस्र=चतुष्कोणः। शीतचतुष्टये स्पर्शं शीतोष्णस्निग्धरूक्षचतुःप्रकारे। अबाधकौ=परस्पराविरोधकौ शीतस्निग्धौ शीतरूक्षौ उष्णस्निग्धौ उष्णरूक्षौ। एकदा=एकसमये। शीतोष्णयोरेकं स्निग्धरूक्षयोरेकं। उक्तं च महापुराणेः -

अणवः कार्यलिङ्गाः स्युः द्विस्पर्शाः परिमण्डलाः।

एकवर्णरसा नित्याः स्युरनित्याश्च पर्ययैः॥२४/१४८॥

अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम्।

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले॥१॥

धर्माधर्मनभः काला अर्थपर्यायगोचराः।

व्यंजनेन तु सम्बद्धौ द्वावन्यौ जीवपुद्गलौ॥२॥

टिप्पण—अनाद्यनिधने=आद्यन्तरहिते। उन्मज्जति=प्रादुर्भवति। निमज्जन्ति =विनश्यन्ति।

सूत्रार्थ—पुद्गलपरमाणु में एक वर्ण, एक गंध, एक रस और परस्पर अविरुद्ध दो स्पर्श होते हैं। इन गुणों की जो चिरकाल स्थायी पर्यायें हैं वे स्वभावगुण-व्यंजन पर्यायें हैं।

विशेषार्थ—तीखा, चरपरा, कसायला, खट्टा, मीठा इन पाँच रसों में से

एक काल में एक रस रहता है। शुक्ल, पीत, रक्त, काला, नीला इन पाँच वर्णों में से एक वर्ण एक काल में रहता है। सुगन्ध, दुर्गन्ध इन दो प्रकार की गंध में से कोई एक गंध एक काल में रहती है। शीत व उष्ण स्पर्श में से कोई एक तथा स्निग्ध व रूक्ष स्पर्श में से कोई एक, इस प्रकार दो स्पर्श एक काल में परमाणु में रहते हैं। अर्थात् शीत-स्निग्ध, शीत-रूक्ष, उष्ण-स्निग्ध, उष्ण-रूक्ष-स्पर्श के इन चार युगलों में से कोई एक युगल एक काल में एक परमाणु में रहता है। शीत-उष्ण ये दोनों स्पर्श या स्निग्ध-रूक्ष ये दोनों स्पर्श एक काल में एक परमाणु में नहीं रह सकते, क्योंकि ये परस्पर में विरुद्ध हैं।

एयरस वण्णगंधं दो फासं सद्दकारणमसद्दं।

खुंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि ॥८१॥ (पंचास्तिकाय)

अर्थ—जिसमें कोई एक रस, कोई एक वर्ण, कोई एक गंध व दो स्पर्श हों, जो शब्द का कारण हो, स्वयं शब्द रहित हो, जो स्कंध से जुदा हो, उस पुद्गलद्रव्य को परमाणु कहते हैं।

इस प्रकार पुद्गल द्रव्य की परमाणु रूप शुद्ध पर्याय में वर्ण, गंध व रस गुणों की एक एक पर्याय होती है तथा स्पर्शगुण की परस्पर अविरुद्ध दो पर्यायें होती हैं। वे स्वभाव गुण पर्यायें हैं। वे पर्यायें चिरकाल तक भी रहती हैं, अतः व्यंजनपर्यायें हैं। अर्थात् पुद्गल-परमाणु में वर्ण, गंध, रस व स्पर्श गुणों की चिरकाल तक रहने वाली पर्यायें, पुद्गल की स्वभावगुणव्यंजन पर्यायें हैं।

॥ इति व्यंजन पर्यायः ॥

अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम्।

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥१॥

धर्माधर्मनभः काला अर्थपर्यायगोचराः।

व्यंजनेन तु सम्बद्धौ द्वावन्यौ जीवपुद्गलौ ॥२॥

अर्थ—अनादि-अनन्त द्रव्य में अपनी अपनी पर्यायें प्रतिक्षण उत्पन्न होती रहती हैं और विनशती रहती हैं जैसे जल में लहरें उत्पन्न होती रहती हैं और विनशती रहती हैं॥१॥

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य इन चारों द्रव्यों में अर्थ पर्याय ही होती हैं किन्तु इनसे भिन्न जीव और पुद्गल इन दोनों द्रव्यों में

व्यंजनपर्यायें भी होती हैं॥२॥

विशेषार्थ—गाथा १—द्रव्यार्थिक नय के अवलम्बन से द्रव्य नित्य है—न उत्पन्न होता है और न विनष्ट होता है अर्थात् अनादि—अनिधन है, सत् स्वभाव वाला है। कहा भी है—

“उप्यत्ती व विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो।”

(पंचास्तिकाय गाथा ११)

“द्रव्यस्य त्रिकालावस्थायिनोऽनादिनिधनस्य न समुच्छेद—समुदयौ युक्तौ। ततो द्रव्यार्थापणायामनुत्पादमनुच्छेदं सत्स्वभावमेव द्रव्यं।” (श्री अमृतचन्द्र आचार्य की टीका)

“अनादिनिधनस्य द्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेनोत्पत्तिश्च विनाशो वा नास्ति।” (श्री जयसेन आचार्य की टीका)

यद्यपि द्रव्यार्थिक नय से द्रव्य त्रिकाल अवस्थायी अनादि—अनिधन है, उत्पाद—व्यय से रहित है तथापि पर्यायार्थिक नय के अवलम्बन से उस अनादि—अनिधन द्रव्य में प्रतिक्षण पर्यायें उत्पन्न होती हैं, विनष्ट होती हैं, क्योंकि द्रव्य अनित्य है और उत्पाद व्यय—सहित है। कहा भी है—

उप्यज्जंति वियंति य भावा णियमेण पज्जवणयस्स।

दव्वट्टियस्स सव्वं सदा अणुप्पण्णमविणट्ठं॥

(जयधवल, पु०१, पृ० २४८)

अर्थ—पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा द्रव्य नियम से उत्पन्न होते हैं और नाश को प्राप्त होते हैं तथा द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा वे सदा अविनष्ट और अनुत्पन्न स्वभाव वाले हैं।

इस प्रकार दोनों नयों के अवलम्बन से वस्तुस्वरूप की सिद्धि हो सकती है, क्योंकि वस्तुस्वरूप अनेकान्तमयी है। इन दोनों नयों में से किसी एक नय का एकान्त पक्ष ग्रहण करने से संसारादि का अभाव हो जाएगा। कहा भी है—

ण य दव्वट्टियपक्खे संसारो णेव पज्जवणयस्स।

सासयवियत्तिवायी जम्हा उच्छेदवादीया॥

(जयधवल, पु०१, पृ० २४९)

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय के पक्ष में संसार नहीं बन सकता है। उसी प्रकार सर्वथा पर्यायार्थिक नय के पक्ष में भी संसार नहीं बन सकता है, क्योंकि द्रव्यार्थिक

नय नित्यव्यक्तिवादी है और पर्यायार्थिक नय उच्छेदवादी है।

विशेषार्थ—गाथा २-धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये चारों द्रव्य सर्वदा शुद्ध हैं, क्योंकि कभी बंध को प्राप्त नहीं होते अतः इन चारों द्रव्यों में अगुरुलघुगुण के कारण प्रतिक्षण षट्गुणवृद्धि-हानि रूप अर्थपर्याय होती रहती हैं, किन्तु बंध के सम्बन्ध से होने वाली क्रिया निमित्तक पर्यायें अथवा व्यंजनपर्यायें नहीं होती हैं। जीव और पुद्गल ये दोनों द्रव्य बंध को प्राप्त होने के कारण अशुद्ध होते हैं। अतः इनमें क्रियानिमित्तक तथा व्यंजन पर्यायें भी होती हैं। कहा भी है—

परिणामजुदो जीओ गइगमणुवलंभओ असंदेहो।
तह पुगगलो य पाहणपहुइ-परिणामदंसणा गाउं॥२६॥
वंजणपरिणइविरहा धम्मादीआ हवे अपरिणामा।
अथ परिणाममासिय सव्वे परिणामिणो अत्था॥२७॥

(वसुनन्दि श्रावकाचार)

अर्थ—जीव परिणामयुक्त है अर्थात् परिणामी है, क्योंकि उसका स्वर्ग, नरक आदि गतियों में निःसन्देह गमन पाया जाता है। इसी प्रकार पाषाण मिट्टी आदि स्थूल पर्यायों के परिणमन देखे जाने से पुद्गल को परिणामी जानना चाहिए। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य ये चारों द्रव्य व्यंजनपर्याय के अभाव से यद्यपि अपरिणामी कहलाते हैं तथापि अर्थपर्याय की अपेक्षा ये द्रव्य परिणामी हैं, क्योंकि अर्थपर्याय सभी द्रव्यों में होती है।

“धर्मादीनि द्रव्याणि यदि निष्क्रियाणि ततस्तेषामुत्पादो न भवेत्। क्रियापूर्वको हि घटादीनामुत्पादो दृष्टः ?...क्रियानिमित्तोत्पादाभावेऽप्येषां धर्मादीनामन्यथोत्पादः कल्प्यते।...अनन्तानामगुरुलघुगुणानामागम-प्रामाण्यादभ्युपगम्यमानानां षट्स्थानपतितया वृद्ध्या हान्या च प्रवर्तमानानां स्वभावादेतेषामुत्पादो व्ययश्च।” (सर्वार्थसिद्धि ५/७)

अर्थात् क्योंकि घटादिक का क्रियापूर्वक ही उत्पाद होता है इसलिए निष्क्रिय धर्मादि द्रव्यों को उत्पाद कैसे हो सकता है ? यद्यपि इन धर्मादिक द्रव्यों में क्रियानिमित्तक उत्पाद नहीं है तो भी इनमें अन्य प्रकार से उत्पाद माना गया है। प्रत्येक द्रव्य में आगम प्रमाण से अनन्त अविभाग-प्रतिच्छेद वाला अगुरुलघुगुण स्वीकार किया गया है जिसका छह स्थानपतित वृद्धि हानि के

द्वारा वर्तन होता रहता है, अतः इन धर्मादि द्रव्यों का उत्पाद-व्यय स्वभाव से होता है।

इस प्रकार धर्मादि चार द्रव्यों में स्वभाव अर्थपर्याय होती है किन्तु जीव और पुद्गल में व्यंजनपर्यायें भी होती हैं।

॥ इति पर्यायाधिकारः॥

स्वभावाधिकारः

प्रकारान्तर से द्रव्य का लक्षण-

गुणपर्ययवद्द्रव्यम्॥२७॥^१

सूत्रार्थ—गुण-पर्याय वाला द्रव्य है।

विशेषार्थ—पहले सूत्र ६ व ७ में द्रव्य का लक्षण 'सत्' तथा 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य' कह चुके हैं फिर भी यहाँ प्रकारान्तर से द्रव्य का लक्षण कहा गया है। द्रव्य का गुण और पर्यायों से कथंचित् भेद है इसलिये सूत्र में 'मतुप्' प्रत्यय का प्रयोग किया गया है। गुण अन्वयी होते हैं और पर्याय व्यतिरेकी होती हैं। कहा भी है—

गुण इदि दव्वविहाणं दव्वविकारो हि पज्जवो भणिदो।

तेहि अणूणं दव्वं अजुदपसिद्धं हवे णिच्चं॥^२

अर्थ—द्रव्य में भेद करने वाले धर्म को विशेष गुण और द्रव्य के विकार को पर्याय कहते हैं। द्रव्य इन दोनों से युक्त होता है तथा वह अयुतसिद्ध और नित्य होता है। अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्याय से अभिन्न होता है।

जिसके द्वारा एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से जुदा होता है वह विशेष गुण है। इस गुण के द्वारा द्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होता है। यदि भेदक विशेष गुण न हो तो द्रव्य में सांकर्य हो जाये।^३

सूत्र ६, ७ व २७ के द्वारा द्रव्य का लक्षण तीन प्रकार कहा गया है। द्रव्य के इन तीन लक्षणों में से किसी एक लक्षण का कथन करने पर शेष दोनों लक्षण भी अर्थ से ग्रहण हो जाते हैं। जैसे नित्य-अनित्य स्वभाव वाले 'सत्' कहने से नित्यरूप ध्रौव्य और अनित्यरूप उत्पाद-व्यय का अथवा नित्यरूप

१.यही सूत्र मोक्षशास्त्र अ० ५ में सूत्र ३८ है। २. सर्वार्थसिद्धि ५/३८। ३. सर्वार्थसिद्धि ५/३८।

गुण का और अनित्यरूप पर्याय का ग्रहण हो जाता है^१। इस प्रकार इन तीनों लक्षणों में कोई भेद या अन्तर नहीं है, मात्र विवक्षा भेद है।

द्रव्यों के सामान्य व विशेष स्वभावों का कथन -

स्वभावाः कथ्यन्ते-अस्तिस्वभावः, नास्तिस्वभावः, नित्य-स्वभावः, अनित्यस्वभावः, एकस्वभावः, अनेकस्वभावः, भेदस्वभावः, अभेदस्वभावः, भव्यस्वभावः, अभव्यस्वभावः, परमस्वभावः एते द्रव्याणामेकादश सामान्यस्वभावाः, चेतनस्वभावः, अचेतनस्वभावः, मूर्तस्वभावः, अमूर्तस्वभावः, एकप्रदेशस्वभावः, अनेकप्रदेशस्वभावः, विभावस्वभावः, शुद्धस्वभावः, अशुद्धस्वभावः, उपचरितस्वभावः एते द्रव्याणां दशविशेषस्वभावाः॥२८॥

टिप्पण—स्वभावाः=द्रव्याणां स्वरूपाणि । तत्कालपर्यायाक्रान्तं वस्तु भावो विधीयते । भो गुणाधिकारस्तु प्रोक्त एव पुनः स्वभावाधिकारः पृथक् निरूपयते तत्र को भेदः ? तत्रोत्तरं यो गुणः स गुणिन्येव प्राप्यते । कुतः? गुणगुणिनोरभेदश्च । स्वभावो गुणेपि गुणिन्यपि प्राप्यते । कुतः ? गुणो गुणी स्वस्वपरिणतिपरिणमति । या परिणतिः सैव स्वभावः, अयं विशेषः । तस्मात् स्वभावस्वरूपं पृथक् लिख्यते । अस्तिस्वभावः=स्वभाव-लाभाद-च्युतत्वाद्गिदाहवदस्तिस्वभावः । नास्तिस्वभावः=परस्वरूपेणा-भावान्नास्ति-स्वभावः । नित्यस्वभावः =निजनिज-नानापर्यायेषु तदेवेदमिति द्रव्यस्योपलम्भान्नित्यस्वभावः । अनित्यस्वभावः-तस्यापि अनेकपर्याय परिणामत्वादनित्यस्वभावः । एकस्वभावः=स्वभावानामेकाधारत्वादेक-स्वभावः । अनेकस्वभावः=एकस्यापि अनेकस्वभावोपलम्भात् अनेकस्वभावः । भेदस्वभावः=गुणगुण्यादि संज्ञाभेदाद्-भेदस्वभावः । अभेदस्वभावः= गुणगुण्याद्येकस्वभावात् अभेदस्वभावः । भव्यस्वभावः=भाविकाले स्वरूपाकारभवनात् भव्यस्वभावः । अभव्यस्वभावः=कालत्रयेऽपि परस्वरूपाकाराभवनात् अभव्यस्वभावः । (“ भवितुं परिणमितुं योग्यत्वं तु भव्यत्वं तेन विशिष्टत्वाद् भव्याः । तद्विपरीतेनाभव्याः” नयचक्र गाथा ६३ टिप्पण- द्रव्यस्य

१. पंचास्तिकाय गा.१० की टीका ।

सर्वदा अभूतपर्यायैः भाव्यमिति भव्यः, द्रव्यस्य सर्वदा भूतपर्यायैरभाव्यमिति अभव्यः—पंचास्तिकाय गाथा ३७ टीका। ‘भव्यस्यैकांतेन परपरिणत्या संकरादिदोषसम्भवः, अभव्यस्यापि तथा शून्यताप्रसंगः स्वरूपेणाप्यभवनात्!’ नयचक्र, पृ०४०।) परमस्वभावः= पारिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावः। चेतनस्वभावः=असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः। अचेतनस्वभावः=जीवस्यापि असद्भूतव्यवहारेण अचेतनस्वभावः। मूर्तस्वभावः= जीवस्यापि असद्भूत-व्यवहारेण मूर्तस्वभावः। अमूर्तस्वभावः=स्पर्शरस-गंधवर्णरहितः अमूर्तस्वभावः। एकप्रदेशस्वभावः=अखंडापेक्षया एकप्रदेशस्वभावाः। अनेकप्रदेश-स्वभावः=भेदापेक्षया अनेकप्रदेशस्वभावः। विभावस्वभावः= स्वभावादन्वया भवनं विभावस्वभावः। शुद्धस्वभावः=शुद्धं केवलभावं। अशुद्धस्वभावं=तस्मात् (शुद्धात्) विपरीतमशुद्धं। उपचरितस्वभावः=स्वभावस्यान्यत्रोपचारादुप-चरितस्वभावाः, यथा सिंहो माणवकः, स द्वेषा कर्मजस्वाभाविकभेदात्, यथा जीवस्य मूर्तत्वमचेतनत्वं, यथा सिद्धानां परज्ञता परदर्शकत्वं च।

सूत्रार्थ—स्वभावों का कथन किया जाता है—१. अस्तिस्वभाव, २. नास्तिस्वभाव, ३. नित्यस्वभाव, ४. अनित्यस्वभाव, ५. एकस्वभाव, ६. अनेकस्वभाव, ७. भेदस्वभाव, ८. अभेदस्वभाव, ९. भव्यस्वभाव, १०. अभव्यस्वभाव, ११. परमस्वभाव—ये ग्यारह द्रव्यों के सामान्य स्वभाव हैं; १. चेतनस्वभाव, २. अचेतनस्वभाव, ३. मूर्तस्वभाव, ४. अमूर्तस्वभाव, ५. एकप्रदेशस्वभाव, ६. अनेकप्रदेशस्वभाव, ७. विभावस्वभाव, ८. शुद्धस्वभाव, ९. अशुद्धस्वभाव, १०. उपचरितस्वभाव— ये दश द्रव्यों के विशेष स्वभाव हैं।

विशेषार्थ—द्रव्यों के स्वरूपको स्वभाव कहते हैं। तत्काल पर्याय को प्राप्त वस्तु भाव कहलाती है। अथवा वर्तमान पर्याय से युक्त द्रव्य को भाव कहते हैं।^१

प्रश्न—गुणाधिकार कहा जा चुका है फिर स्वभाव अधिकार को पृथक् कहा जा रहा है। इसमें क्या रहस्य है ?

उत्तर—जो गुण है वह गुणी में ही प्राप्त होते हैं।

प्रश्न—गुण गुणी में किस प्रकार प्राप्त होते हैं ?

उत्तर—गुण गुणी में अभेद हैं इसलिए गुण गुणी में ही प्राप्त होते हैं। स्वभाव गुण में भी प्राप्त होते हैं और गुणी में भी प्राप्त होते हैं।

प्रश्न—स्वभाव गुण और गुणी में किस प्रकार प्राप्त होते हैं ?

उत्तर—गुण और गुणी अपनी अपनी पर्याय से परिणमन करते हैं। जो परिणति अर्थात् पर्याय है वह ही स्वभाव है। गुण और स्वभाव में यह विशेषता है। इसलिए स्वभाव का स्वरूप पृथक् लिखा गया है।

१. जिस द्रव्य का जो स्वभाव है, उसका अपने स्वभाव से कभी च्युत नहीं होना अस्तिस्वभाव है, जैसे अग्नि अपने दाह स्वभाव से कभी च्युत नहीं होती। (आलापपद्धति सूत्र १०६)

२. परस्वरूप नहीं होने के कारण 'नास्तिस्वभाव' है। (सूत्र १०७)

३. अपनी अपनी नाना पर्यायों में 'यह वही है' इस प्रकार द्रव्य का हमेशा सद्भाव पाया जाना 'नित्यस्वभाव' है। (सूत्र १०८)

४. उस द्रव्य का अनेक पर्याय रूप परिणत होने से 'अनित्य स्वभाव' है। (सूत्र १०९)

५. सम्पूर्ण स्वभावों का एक आधार होने से 'एकस्वभाव' है। (सूत्र ११०)

६. एक ही द्रव्य के अनेक स्वभावों की उपलब्धि होने से 'अनेकस्वभाव' है। (सूत्र १११)

७. गुण गुणी आदि में संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा भेद होने से 'भेदस्वभाव' है। (सूत्र ११२)

८. गुण-गुणी आदि में प्रदेश भेद नहीं होने से अथवा एक स्वभाव होने से 'अभेदस्वभाव' है। (सूत्र ११३)

९. भाविकाल में आगे की (भावि) पर्यायों के होने योग्य है अथवा अपने स्वरूप से परिणमन करने योग्य है अतः 'भव्यस्वभाव' है। (सूत्र ११४)

१०. काल-त्रय में भी पीछे की (भूत) पर्यायाकार होने के अयोग्य है अथवा पर-द्रव्य स्वरूपाकार होने के अयोग्य है अतः 'अभव्यस्वभाव' है। (सूत्र ११५)

११. पारिणामिक भाव की प्रधानता से 'परमस्वभाव' है। (सूत्र ११६)

ये ग्यारह सामान्य स्वभाव हैं। विशेष दस स्वभावों में से—

१. चेतनस्वभाव, २. अचेतनस्वभाव, ३. मूर्तस्वभाव, ४. अमूर्त-स्वभाव— इन चार स्वभावों की व्याख्या सूत्र ९ के विशेषार्थ में हो चुकी है। शेष छह विशेष स्वभावों की व्याख्या निम्न प्रकार है—

५. अखण्डपने की अपेक्षा 'एकप्रदेश' स्वभाव है।

६. भेदपने की अपेक्षा 'अनेकप्रदेश' स्वभाव है।

७. स्वभाव से अन्यथा होना 'विभाव' स्वभाव है। (सूत्र १२१)

८. कैवल्य अर्थात् शुद्धभाव को 'शुद्ध' स्वभाव कहते हैं। (सूत्र १२२)

९. शुद्ध स्वभाव से विपरीत 'अशुद्ध' स्वभाव है। (सूत्र १२२)

१०. स्वभाव का अन्यत्र उपचार करना 'उपचरित' स्वभाव है, जैसे मार्जार (बिलाव) को सिंह कहना। वह उपचरित स्वभाव दो प्रकार का है—१. कर्मज, २. स्वाभाविक। जीव के मूर्तत्व और अचेतनत्व उपचरित-कर्मज-स्वभाव हैं। सिद्धों के सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता स्वाभाविक-उपचरित-स्वभाव हैं—क्योंकि अनुपचरित नय से जीव के अमूर्त व चेतन स्वभाव हैं और सिद्ध आत्मज्ञ हैं। (सूत्र १२३-१२४)

जीव और पुद्गल के भावों की संख्या -

१जीवपुद्गलयोरेकविंशतिः॥२९॥

सूत्रार्थ—जीव में और पुद्गल में उपर्युक्त इक्कीस इक्कीस (११ सामान्य और १० विशेष) स्वभाव पाए जाते हैं॥३५॥

विशेषार्थ—जीव में इक्कीस भाव बतलाये गये हैं जिससे स्पष्ट हो जाता है कि जीव में अचेतन स्वभाव और मूर्तस्वभाव भी है। इसी प्रकार पुद्गल में भी इक्कीस स्वभाव कहे गये हैं जिससे स्पष्ट है कि पुद्गल में चेतन और अमूर्तस्वभाव भी है।

शंका—छह द्रव्यों में जीव चेतन स्वभाव वाला और शेष पाँच द्रव्य (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, कालद्रव्य) अचेतन स्वभाव वाले हैं। यदि जीव में भी अचेतन स्वभाव मान लिया जायेगा तो जीव में और अन्य पाँच द्रव्यों में कोई अन्तर नहीं रहेगा ?

१. 'इति जीवः' यह पाठ दिल्ली की प्रति नं० ३१/१०४ में है।

